

सात उत्कृष्ट एकांकी

सम्पादक

प० रत्नचन्द, एम. ए, एम ओ. एल



पंजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो
चण्डीगढ़

Published by :

Shri Raghunandan, Shastri, M.A., M.O.L.,
Secretary, Publication Bureau,
PANJAB UNIVERSITY, CHANDIGARH.

प्रथम संस्करण १९५८

द्वितीय संस्करण १९५९

तृतीय संस्करण १९६१

चतुर्थ संस्करण १९६३

पंचम संस्करण १९६४

~~मूल्य एक रुपया चालीस पैसे~~
~~Price Rs. 1.40 P.~~
मूल्य एक रुपया चालीस पैसे
Price Rs. 1.40 P.

*(All rights including those of translation, reproduction,
annotation etc., are reserved by the
Panjab University.)*

Printed at :

Narendra Printing Press,
20 Model Basti,
NEW DELHI-5.

हमारा राष्ट्र-गीत

जन-गण-मन-अधिनायक

जय हे भारत-भाग्य-विधाता !

पंजाब सिंधु गुजरात मराठा

द्राविड़ उत्कल बंगा,

विंध्य हिमाचल यमुना गंगा

उच्छल जलधि तरंगा,

तव शुभ नामे जागे

तव शुभ आशिष मांगे

गाहे तव जय गाथा ।

जन-गण-मंगल-दायक जय हे, भारत-भाग्य-विधाता !

जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे !!

विषय-सूची

सख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१.	भूमिका	सात और आठ
२	कलंक-रेखा ...	डा रामकुमार वर्मा	१—३१
३	सच्चा धर्म ...	सेठ गोविन्ददास	३२—४३
४.	जोंक ..	श्री उपेन्द्रनाथ 'अस्क'	४४—६६
५	संस्कार और भावना	श्री विष्णुप्रभाकर	७०—८२
६	मालव-प्रेम ...	श्री हरिकृष्ण प्रेमी	८३—९२
७.	कफ़र्यू ...	श्री मोहन 'राकेश'	९३—१११
८.	भोर का तारा ...	श्री जगदीशचन्द्र माथुर	११२—१३०
९.	परिशिष्टिका		
	(क) लेखक-परिचये	१३३—१४०
	(ख) अर्थावली	१४१—१४४

सौजन्य-स्वीकृति

कापी राइट सन्दर्भों के प्रकाशन की अनुमति प्रदान करने के सौजन्य के लिए निम्नलिखित महानुभाव हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं—

‘कलक-रेखा’ के लिये श्री डा. रामकुमार वर्मा; ‘सच्चा धर्म’ के लिये श्री सेठ गोविन्ददास; ‘जोंक’ के लिये श्री उपेन्द्रनाथ ‘अश्क’; ‘संस्कार और भावना’ के लिए श्री विष्णुप्रभाकर; ‘मालव-प्रेम’ के लिये श्री हरिकृष्ण ‘प्रेमी’; ‘कर्पूरू’ के लिये श्री मोहन ‘राकेश’; और ‘भोर का तारा’ के लिये श्री जगदीश-चन्द्र माथुर ।

भूमिका

एकाकी का अर्थ है एक ही अंक में समाप्त होने वाला नाटक । प्राचीन भारत में ऐसे एकाकियों का बड़ा प्रचलन था । संस्कृत ग्रन्थों में एकाकी रूपको के अंक, भाण, वीथी, व्यायोग, प्रहसन आदि कई भेदों का उल्लेख पाया जाता है, जिससे स्पष्ट है कि उस समय भारत में एकाकी-कला का पूर्ण विकास हो चुका था । बहुत प्राचीन काल के कविवर भास द्वारा लिखित 'ऊरुभग' और श्री नीलकण्ठ का 'कल्याण-सौगन्धिक' उस समय के प्रसिद्ध एकांकी है । आगे चल कर कुछ समय के लिए यह कला लुप्त-प्राय सी हो गई । इस्लाम धर्म में नाटक खेलना या अभिनय करना धर्म-विरुद्ध समझा जाता था । इसलिए मुसलमानों के शासनकाल में इस कला को पनपने के लिये समुचित वातावरण प्राप्त न हो सका । उससे आगे अंग्रेजों के शासनकाल में एकाकी-लेखन-कला का पुनर्जन्म हुआ । भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी जैसे हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों ने देश में जागृति लाने के लिए हिन्दी भाषा में कई एकाकी लिखे ।

उस समय यूरोप में भी एकाकी-कला का आरम्भ हो गया था । मशीन युग के आ जाने के कारण अब वहाँ के लोग काम-धन्धों में बहुत उलझे रहते थे । मनोरजन के लिए अब वे इतना अधिक समय नहीं निकाल सकते थे कि रातभर चलने वाले लम्बे-लम्बे नाटक देखा करें । सो वहाँ की आवश्यकता ने थोड़े से समय में इतना अधिक मनोरजन कराने वाली इस एकाकी-कला को जन्म दिया । धीरे-धीरे यह कला वहाँ

इतनी अधिक विकसित हुई कि आजकल यह वहाँ के साहित्य का एक मुख्य अंग बन चुकी है। यूरोप की इस एकाकी-कला ने हमारे आधुनिक हिन्दी एकाकी को बहुत अधिक प्रभावित किया है। एकाकियों के जितने भेद अंग्रेजी-साहित्य में पाये जाते हैं, हिन्दी-लेखकों ने उन सबके नमूने उतारे हैं। अब हिन्दी में ऐतिहासिक, सामाजिक, व्यंग्यात्मक, समस्या-प्रधान, प्रहसन, रेडियो-रूपक आदि सभी प्रकार के एकाकी पाये जाते हैं।

हमारे उत्कृष्ट-प्रतिभाशाली लेखकों ने हिन्दी एकाकी-कला को समृद्ध बनाने में बड़े प्रशस्य प्रयत्न किये हैं। इनमें से विशेष ख्याति-प्राप्त-कुछेक एकाकीकारों के नाटक इस संग्रह में संकलित किये गये हैं।

डा० रामकुमार वर्मा—

कलंक-रेखा

[एक ऐतिहासिक एकांकी]

नाटक के पात्र

महाराणा भीमसिंह—उदयपुर के महाराज ।
महारानी चावडी —महाराणा भीमसिंह की पत्नी ।
कृष्णाकुमारी —महाराणा की पुत्री ।
देवला —कृष्णाकुमारी की सखी ।
जवानसिंह —महाराणा भीमसिंह के छोटे भाई ।
संग्रामसिंह —शक्तावत सरदार ।

सँपैरा और अन्य चार व्यक्ति ।

स्थान—उदयपुर

काल—२१ जुलाई, १८१०

समय—सन्ध्या के ५ बजे ।

[राजमहल के समीप एक उपवन । जवानसिंह और देवला मे
बातचीत हो रही है । देवला फूल चुन रही है ।]

जवानसिंह—(विह्वल स्वर में) एक बात पूछूँ, देवला ?

देवला—हाँ कुंवर चाचा ! लेकिन.....

जवानसिंह—लेकिन क्या ?

देवला—मुझे राजकुमारी के लिए फूल चुनकर पूजा की सामग्री
सजानी है । पहले उनके लिए फूल चुन लूँ ।

जवानसिंह—(अप्रतिभ शब्द में) फूल-सी राजकुमारी के लिए फूल ! (सम्हलकर) बहुत अच्छा । मैं सोच रहा था कि फूल के स्थान पर कहीं राजकुमारी ही पूजा की सामग्री न बन जाय ।

देवला—यह तो सच है, कुँवर चाचा, जब राजकुमारी कृष्णा देवप्रतिमा के सामने नत-मस्तक होती है, तो ज्ञात होता है, जैसे देवप्रतिमा के चरणों पर एक सजीव फूल चढ़ा हुआ है ।

जवानसिंह—(सोचते हुए) सजीव फूल.....सजीव फूल ! (सहमा) एक बात पूछूँ, देवला ?

देवला—हाँ, कुँवर चाचा ! लेकिन

जवानसिंह—फिर लेकिन.....?

देवला—हाँ, आजकल राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती, या तो कही जाती है, या सुनी जाती है

जवानसिंह—आजकल ऐसा क्यों, देवला ?

देवला—इसलिए कि प्रश्न का चिह्न बिच्छू के डंक की तरह टेढ़ा है, जिसमें जहर भरा रहता है । जब तक प्रश्न का उत्तर न मिल जाए, तब तक तो सन्देह के जहर में डूबा ही रहता है ।

जवानसिंह—ठीक है, तो मैं सन्देह नहीं करूँगा, देवला ! मैं सन्देह नहीं करूँगा । मैं यही पूछना चाहता.....मैं यही सुनना चाहता था कि कृष्णाकुमारी का विवाह.....

देवला—(बीच ही में) बस कुँवर चाचा ! आगे नहीं । आप कुँवर हैं, फिर भी राजपूती-रक्त इस वाक्य को पूरा करने की शक्ति नहीं रखता । राजपूतों की आँखों की लाली कुसुम्भा-पात्र में तैर रही है । विदेशियों के लिए हमारे

शस्त्र मखमली म्यानों में गहरी नीद ले रहे हैं। ये प्रश्न रक्त से पूरे किये जाते हैं, शब्दों से नहीं।

जवानसिंह—(टूटते स्वर में) देवला ! तुम ठीक कह रही हो, तुम ठीक कह रही हो, लेकिन.....लेकिन.....

देवला—कुँवर चाचा ! आप इतने घबराए हुए क्यों हैं ? आप के मुख से शब्द ठीक-ठीक निकलते भी नहीं। (गहरी नजर से देखते हुए) अच्छा ! और यह कटार.....यह कटार.....
...यह कटार आपने क्यों खोल रखी है ?

जवानसिंह—(घबराकर) यह कटार ? नहीं तो...नहीं तो...
अच्छा ! यह कटार ? यह कटार ? जो मेरी कमर में है ?
अरे, इसका मखमली म्यान खराब हो गया था। मैंने उसे निकाल दिया। तुम्हीं ने तो अभी कहा था कि विदेशियों के लिए हमारे शस्त्र मखमली म्यानों में गहरी नीद ले रहे हैं। इसलिए मैंने पहले से ही इस कटार का म्यान निकाल कर फेंक दिया।और तुम्हारी सखी तो यही कही होगी। मुझे मिली नहीं।

देवला—राजकुमारी पूजा के वस्त्र धारण करने गई हैं। उन्होंने मुझे फूल चुनने के लिए कहा और..... (लोगों की बातचीत का सम्मिलित स्वर, जो दूर से धीरे-धीरे पास आता जा रहा है)

एक स्वर—क्यों, यह कैसे हुआ !

दूसरा स्वर—वह कहाँ थी ?

तीसरा स्वर—क्या मर गई ?

चौथा स्वर—नहीं, अभी जीवित होगी।

(सँपेरे की वीन सुनाई पड़ती है।)

जवानसिंह—(घबराए स्वर में) कुछ लोग आ रहे हैं ! अच्छा देवला ! अब मैं जाता हूँ।

देवला—ठहरिए, ठहरिए, देखिए, बाहर कौन है ? क्या दुर्घटना हो गई, किसी को सर्प ने काट लिया ?

जवानसिंह—(विह्वल स्वर में) नहीं नहीं,.....कोई दुर्घटना नहीं हो सकती । कोई दुर्घटना नहीं हुई । कृष्णा को...कृष्णा को यह मालूम न हो कि मैं.....मैं.....यहाँ आया था.....(दूर जाता हुआ स्वर) मैं यहाँ आया था ।
(प्रस्थान)

देवला—(दुहराते हुए) कृष्णा को मालूम न हो कि मैं यहाँ आया था ! (सोचते हुए) कुछ समझ में नहीं आता ! कुँवर चाचा जवानसिंह कटार लेकर आए और चले गए ! और.....और कृष्णा को मालूम न होने पावे !.....(वीन बन्द हो जाती है ।)

नेपथ्य में एक स्वर—जहर तो सारे शरीर में फैल गया ।

दूसरा स्वर—अब तो वह हमेशा के लिए सो गई !

तीसरा स्वर—वीन बजाने से क्या होगा ?

पहला स्वर—वीन बजाने से सर्प आ जायेगा और काटी हुई जगह से ज़हर खींच लेगा ।

तीसरा स्वर—न जाने साँप कहाँ होगा ?

दूसरा स्वर—अरे, सब कहने की बातें हैं ! कहाँ का साँप और.....और कहाँ का जहर खींचना ।

१२ स्वर—हाय, बेचारी मर गई ! अभी उमर ही क्या थी !

पहला स्वर—भाग्य की बात !

(वीन थोड़ी देर तक बजती है)

देवला—(पुकार कर) ए वीन वाले ! (वीन रुक जाती है ।)

क्या इसे साँप ने काट लिया ?

वीन वाला—हाँ अन्नदाता ! ज़हर चढ़ गया है ।

देवला—तो इसका जहर नहीं उतार सकते ?

बीन वाला—यत्नवान् हूँ, अन्नदाता ! बीन बजा कर सर्प को
बुला रहा हूँ । वही सारा जहर खींच लेगा ।

देवला—ठीक है । पर इसे यहाँ से दूर ले जाओ । यहाँ राज-
कुमारी के घूमने की जगह है । इस बेचारी स्त्री को देख
कर राजकुमारी को दुःख होगा ।

बीन वाला—अच्छा, अन्नदाता ! (अपने साथियों से) चलो जी,
उठाओ । दूर ले चलो इसे ।

(बीन बजती है । धीरे-धीरे उसका स्वर दूर हो जाता है ।)

देवला—(गहरी साँस लेकर) बेचारी स्त्री ! दो घंटे पहले हँस रही
होगी । इस समय ज़मीन पर पड़ी है ! ओह ! कितना
भयानक जहर है !

(राजकुमारी कृष्णा का प्रवेश)

कृष्णा—देवला !

देवला—राजकुमारी !

कृष्णा—देवला ! तू फूल चुनने के लिए आई थी, यही रुक गई ?

देवला—(अपराधी के-से स्वर में) राजकुमारी ! मैं.....

कृष्णा—(बीच ही में) बीन सुन रही थी ? तेरा बचपन अभी तक
नहीं गया ! कौन था वह बीन वाला ?

देवला—कोई नहीं, राजकुमारी ! साँपों का खेल दिखलाता था ।
थोड़ी देर देखने लगी ।

कृष्णा—पूजा के समय साँपों का खेल ! ठीक है साँप भी तो
भगवान् एकलिंग के मस्तक के आभूषण है ।

देवला—और राजकुमारी ! कंवर चाचा भी आए थे ।

कृष्णा—कंवर चाचा ? जवानसिंह ? यहाँ ? किस लिए ?

देवला—मैं क्या जानूँ ? उनकी कमर में खुली हुई कटार थी ।

कृष्णा—खुली हुई कटार ? अपनों के लिए या दूसरों के लिए ?

देवला—दूसरों के लिए तो शक्ति ही नहीं रह गई, अपनों के लिए ही होगी और जाते समय मुझ से कह गए कि राज-कुमारी को मालूम न हो कि मैं यहाँ आया था ।

कृष्णा—अच्छा ! तो तूने यह बात मुझसे क्यों कह दी ?

देवला—(हँस कर) मैं राजकुमारी की सखी हूँ, कुछ उनकी सखी तो हूँ नहीं ।

कृष्णा—सच है, मेरी सखी मुझसे कोई बात नहीं छिपा सकती । लेकिन देवला, कुँवर चाचा और कुछ कह रहे थे ?

देवला—बातों ही बातों में वे आपके विवाह की बात पूछना ही चाहते थे कि मैंने दूसरी बात छेड़ दी ।

कृष्णा—(अस्फुट स्वर में) मेरे विवाह की बात ?

देवला—हाँ, मैंने कहा कि कुँवर चाचा ! आजकल राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती, कही या सुनी जाती है ।

कृष्णा—सच देवला ! आज हमारे राजमन्दिर की स्थिति ही ऐसी है, जिसमें विवाह की बात मखमली म्यान की गहराई है, जिसमें कटार या तलवार छिपी रहती है ! मुझे तो इसमें कोई रुचि नहीं है ।

देवला—ऐसा क्यों, राजकुमारी ?

कृष्णा—देवला ! मैं चारों ओर एक विचित्र उदासी का अनुभव कर रही हूँ । पिता के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ प्रतिदिन लम्बी होती जा रही हैं । माता जी मुझे देखकर न जाने क्यों आँसुओं से आँखें भर लेती हैं । मैं कारण जानना चाहती हूँ, तो मुझे कोई ठीक ढंग से उत्तर ही नहीं देता । राजमन्दिर का सारा वातावरण जैसे की सर्प की तरह कुण्डली मार कर बैठा है । कहीं मुझे डस न ले ! तू जानती है ऐसा क्यों ?

देवला—मैं नहीं जानती, राजकुमारी !

कृष्णा—यदि तू नहीं जानेगी, तो कौन जानेगा, देवला ! यह आकाश की निर्मलता जैसे किसी संन्यासी की साधना है, जो संसार से ऊपर उठ चुकी है। यह ठडी वायु जैसे किसी तपस्विनी का आशीर्वाद है, जिससे संसार से विराग उत्पन्न होता है। और मेरे मन में उदासी ऐसी बैठ गई है, जैसे किसी का घर जल गया हो और वह किसी पेड़ के नीचे सिर झुकाए बैठा हो।

देवला—राजकुमारी ! क्षमा करें ! यदि समय का चक्र कभी उदासी की तरह घूम जाए, तो क्या ऐसी बातें भी सोची जानी चाहिएँ, जैसी आप सोच रही है ? वह तो एक बादल है, जो चन्द्रमा के ऊपर आ गया। अभी आया है, अभी चला जायेगा।

कृष्णा—नहीं देवला ! यह वह बादल नहीं है जो चन्द्रमा के ऊपर से चला जाए। यह तो चन्द्रमा के भीतर का कलंक है जो उसके हृदय में समा कर बैठा है, सदैव के लिए ! इससे उसे मुक्ति नहीं है।

देवला—राजकुमारी ! छोड़िए इन बातों को। देखिए मैंने आप के लिए कितने सुन्दर फूल चुने हैं। यह जुही का फूल देखिए, जो सुगन्धि की साधना में इतना छोटा हो गया है। ऐसा ही तो आपका जी छोटा हो रहा है। लेकिन इसकी सुगन्ध आपके रूप की तरह चारों दिशाओं में फैली है।

कृष्णा—पर देवला ! जुही के कितने फूल धूल में गिरे हुए हैं ? मिट्टी में मिलने के लिए ही तो यह रूप नहीं है ?

देवला—राजकुमारी ! यह फूल तो किसी के कण्ठ की श्री और

शोभा बढ़ाएगा, ओर देखिए यह चम्पक, जिसके प्राणों की सुगन्ध उसके हृदय की पीत आभा में साकार हो उठी है। पर यह आपके चरणों की कान्ति भी नहीं पा सका... बेचारा चम्पक... !

कृष्णा—उसके हृदय के पीले रंग में जैसे मेरा सुख-सूर्य अस्त हो रहा है।

देवला—नहीं राजकुमारी ! इसका यह पीत वर्ण आपके विवाह के हरिद्रा रंग का निमन्त्रण है।

कृष्णा—(ग्लानि से) विवाह ! सभी लोग इसकी कामना करते हैं। मेरे मन में न जाने क्यों उसकी चाह नहीं है। माली एक पौदे को अपने बाग में बड़े प्यार से इसलिए लगाए कि फूल निकलने के समय वह उस पौदे को किसी अपरिचित माली को सौंप दे !

देवला—संसार की परम्परा तो यही है, राजकुमारी !

कृष्णा—यह परम्परा मुझे नहीं चाहिए। देवला ! जा, देर हो रही है। इन फूलों की एक सुन्दर-सी माला गूँथ दे। आज भगवान् एकलिंग का कण्ठ इससे सजाऊँगी।

देवला—राजकुमारी ! कण्ठ सजाने का ध्यान तो आप को आया ! (दबी हुई हँसी) जाती हूँ। (प्रस्थान)

कृष्णा—(उदास हँसी-हँसकर) कण्ठ सजाने का ध्यान ! विवाह ! ... परम्परा ! यह सब कुछ नहीं। (देख कर) अरे, पिता जी आ रहे हैं और माता जी भी साथ हैं ? मैं अलग हट जाऊँ। (अलग हट जाती है)

(महाराणा भीमसिंह और महारानी का प्रवेश)

महारानी—महाराणा ! जिस राज्य की नारियों ने क्रन्दन नहीं किया, वहाँ महाराणा के प्राणों का क्रन्दन एक अनहोनी घटना है।

महाराणा—यह एकान्त ठीक है। यहाँ अपने प्राणों का क्रन्दन तुम्हें सुनाऊँगा, महारानी !

महारानी—प्राणों का क्रन्दन, महाराणा !

महाराणा—सचमुच महारानी ! आज बाप्पा रावल के सिंहासन का भार शृगालों के कन्धों पर है। सूर्य ने चमकने के लिए जुगनुओं से प्रकाश माँगा है और समुद्र अपने गर्जन के लिए भीगुरों के स्वरों का भिक्षुक है। तभी तो महाराणा का हृदय आज क्रन्दन करता है। जिसे शब्द भी अंगीकार करने में अपना अपमान समझते हैं, वह क्रन्दन प्राणों में ही सिमट गया है और राजनीति की कगारों से पिस रहा है।

महारानी—तब महाराणा जी, मैं उन कगारों को काटूंगी। मैं क्षत्राणी हूँ ; प्रलय की घटा बन कर ऐसी बरसूंगी कि उसमें कगारे ही नहीं, प्राणों के क्रन्दन भी डूब जायेंगे। और यदि वे नहीं डूबें तो जौहर की लपटों से उनमें चिनगारियाँ भर दूंगी। किन्तु मेवाड़ के मस्तक को मलिन न होने दूंगी।

महाराणा—तुम धन्य हो महारानी ! किन्तु राजनीति जौहर से भी अधिक भयानक है। इस राजनीति की बाढ़ में चित्तौड़ की तीन चिताएँ डूब चुकी हैं, अब...अब सारा उदयपुर डूबने को है।

महारानी—किन्तु महाराणा ! जो अग्नि अभी शीतल नहीं हुई, वह जल की धारा में कैसे डूब सकती है ?

महाराणा—कृष्णा के विवाह के प्रसंग में।

महारानी—कृष्णा के विवाह के प्रसंग में ?

महाराणा—हाँ, महारानी ! अमीरखाँ एक बड़ी सेना लेकर उदयपुर की सीमा पर लोहे की दीवार बनकर खड़ा हुआ

है। उसने चूड़ावत अजीतसिंह के द्वारा कहलाया है कि—
“यदि आप अपनी कन्या का विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह से नहीं करेंगे, तो मैं आपके राज्य को वरवाद कर दूंगा”।

महारानी—किन्तु जब हम कृष्णा का टीका जयपुर के महाराजा जगतसिंह को भेज चुके हैं, तब जोधपुर के महाराजा मानसिंह से हम सम्बन्ध की बात ही कैसे कर सकते हैं ?
और फिर अमीरखाँ को हमारे आपसी सम्बन्ध से क्या मतलब है ?

महाराणा—महारानी ! राजनीति आग की ज्वाला है जो चाहे जिस दिशा में जल सकती है। जो आग पाकशाला का शृङ्गार है, वह सारे घर को जला भी सकती है।

महारानी—लेकिन अमीरखाँ पहले जयपुर-नरेश का सहायक था ?

महाराणा—अब जोधपुर-नरेश का मित्र है। महाराज मानसिंह ने अमीरखाँ को घूस देकर अपनी तरफ़ मिला लिया है।

महारानी—तो अमीरखाँ से कहला दीजिए कि कृष्णा का सम्बन्ध जयपुर में स्थिर हो चुका है, अब जोधपुर से किसी प्रकार की बात नहीं हो सकती।

महाराणा—तो अमीरखाँ उदयपुर में आग लगा देगा ! हमारी समस्त मातृभूमि ही जौहर की चिता बन जायगी !

महारानी—तो क्या जयपुर-नरेश, जो हमारे सम्बन्धी होने जा रहे हैं, हमारी रक्षा न करेंगे ? युद्ध की छाया में ही हम अपनी बेटों का विवाह करेंगे।

महाराणा—यह कैसे होगा, महारानी ! जयपुर-नरेश के सरदारों में पहले से ही फूट है। वे जोधपुर के युद्ध से

वापस चले आए है । हमारे सरदारों में भी फूट है । अब उदयपुर और जयपुर की सम्मिलित सेना भी अमीरखाँ का कुछ नहीं बिगाड़ सकती ।

महारानी—अमीरखाँ इतना प्रचण्ड है ?

महाराणा—हाँ और एक दूसरी कठिनाई भी है । यदि हम जयपुर के जगतसिंह के यहाँ से टीका वापस माँगते हैं, तो वे अपना अपमान समझ कर हम पर आक्रमण कर बैठेंगे । इस प्रकार जयपुर और जोधपुर दोनों ही हमारे शत्रु होंगे और अमीरखाँ कभी इस ओर से कभी उस ओर से हमारे ऊपर मौत और आग बरसाने में पीछे नहीं रहेगा ।

महारानी—तब क्या होगा ?

महाराणा—हमारी मातृभूमि श्मशान बनने की प्रतीक्षा में है । सिंधिया ने सदाशिवराव के द्वारा मेवाड़ से सोलह लाख वसूल कर हमारा कोष समाप्त कर दिया है । उदयपुर के पास शक्ति नहीं है कि वह युद्ध करे ।

महारानी—तब उदयपुर प्राण देकर युद्ध करेगा ।

महाराणा—किन्तु महारानी ! क्या एक कन्या के पीछे मेवाड़, अम्बर और मारवाड़ के हजारों वीरों को रक्त में डूब जाने दूँ ? जिन सरदारों ने वशानुगत मेवाड़ की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया है, क्या उनके पवित्र रक्त को पानी की तरह बह जाने दूँ ? एक ओर कृष्णा का विवाह, दूसरी ओर सहस्रों वीरों के पवित्र रक्त के व्यर्थ बहाने का प्रश्न है ।

महारानी—तो महाराणा ! आप अपने वीरों को बचाइए, राजस्थान की नारियाँ अपनी तलवार उठायेगी ।

महाराणा—भावुक मत बनो, महारानी ! राज्य की दृष्टि से सोचो कि क्या राजा अपने परिवार के एक व्यक्ति की रक्षा के लिए अपनी निरपराध प्रजा के सहस्रों वीरों का बलिदान कर दे ? अपनी कन्या की रक्षा में यदि अपनी मातृभूमि के विनाश के बीज बो दे, तो क्या भविष्य का इतिहास भीमसिंह के नाम पर नहीं थूकेगा ? कन्या के छोटे से जीवन की हल्की साँस के लिए एक तूफान को निमन्त्रण दूँ, जो बाप्पा रावल और महाराणा प्रताप की मातृभूमि के अंग-अंग क्षत-विक्षत कर दे ? एक सुकुमार शरीर की रक्षा के लिए लाखों शक्तिशाली शरीर युद्ध की अग्नि में जलाए जावें ? सहस्रो सिसोदियों की वीरता की ज्योति एक फूँक से बुझ जाने दी जाय ? एक लहराती हुई चिनगारी से सारे नगर में आग लग जाने दी जाय ?

महारानी—तो फिर आपने क्या उपाय सोचा है ?

महाराणा—उपाय ! मेरे लिए कोई उपाय नहीं है, महारानी ! मेरा राजमुकुट आज वह धूमकेतु है जो उदास आकाश के मस्तक पर रखा हुआ है और जिसके उदय होने पर अमंगल और भय की आशका होने लगती है । यह राजमुकुट, जो मुगलों की तलवार के वेग से भी अपने स्थान से नहीं हटा, जो राजपूतों के रक्त की नदियों पर सदब तैरता रहा और एक क्षण को भी न डूबा, आज मेरे आँसू की एक बूंद में डूबना चाहता है ! महारानी, बचाओ ! (चीख कर) मुझे इस कलक से बचाओ !

महारानी—महाराणा

महाराणा—(बीच ही में) आज चित्तौड़ के जौहर की ज्वाला मेरे रोम-रोम में जल रही है। सिसोदियों की वंश-मर्यादा आकाश का हृदय चीरते हुए वज्र की तरह मेरे मस्तक पर गिरने जा रही है। (चीख-कर) बाप्पा रावल ! इस वंश को कलकित करने वाले भीमसिंह को देख रहे हो ? उसके जीवन को मृत्यु का शृङ्गार दो ! उस के कण्ठ को प्रलय की अग्नि बना दो, जिससे वह एक क्षण में भस्म हो जाय !

महारानी—महाराणा ! ऐसे अशुभ वाक्य नहीं सुन सकूंगी। मैं स्वयं इसका उपाय खोजूंगी।

महाराणा—तुम किस प्रकार उपाय खोजोगी, महारानी ? एक ओर अमीरखां यमराज की तरह मृत्यु का जाल खोले खड़ा है, दूसरी ओर हमारे सरदारों की आपसी द्वेष-भावना ने एक दूसरे का रक्त पीने का व्रत लिया है। हमारी शक्ति की तलवार टूट गई है, केवल सूठ हाथ में है। आज बाप्पा रावल की भूमि अपने सम्मान के लिए मृत्यु नेत्रों से हमारे बाहुबल की ओर देख रही है और हम अपनी निर्बलता में अपनी मातृभूमि की ओर देख भी नहीं सकते। सिसोदिया-वंश की ऐसी दशा इतिहास में पहले कभी नहीं हुई।

महारानी—तो क्या हम अपनी मातृभूमि की रक्षा कर ही नहीं सकेंगे ?

महाराणा—चूडावत सरदार अजीतसिंह ने मातृभूमि की रक्षा का एक उपाय प्रस्तुत किया है।

महारानी—कौन-सा ? (उतावली से) शीघ्र बताइए, शीघ्र बताइए !

महाराणा—मैंने वह प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा—अजीतसिंह ! तुम..... तुम अपनी तलवार उठाओ और

अपने महाराणा का कलंक रक्त से धो दो । अजीतसिंह ने कहा.....अजीतसिंह ने कहा—उदयपुर के महाराणा को कर्त्तव्य-वेदी पर अपना हृदय काटना पड़ता है । महाराणा लाखा ने मेवाड़ की बलि-माला में अपने पुत्रों के सिर फूलों की तरह गूँथे थे, महारानियों ने अपने पुत्रों को सुसज्जित कर रण-भूमि में भेजा था । आप एक पुत्री के लिए ही दुःखी हैं ?

महारानी—एक पुत्री के लिए ?

महाराणा—हाँ, सभी सरदार कहते हैं कि इसके अतिरिक्त मेवाड़ का मान किसी प्रकार भी नहीं बचाया जा सकता !

महारानी—चूड़ावत अजीतसिंह का क्या प्रस्ताव था ? मैं शीघ्र सुनना चाहती हूँ, मैं शीघ्र सुनना चाहती हूँ ।

महाराणा—ओह ! मैं उसे कैसे कहूँ ? महारानी ! मेरे कण्ठ से उसकी ध्वनि नहीं निकल सकेगी ।

महारानी—मातृ-भूमि की रक्षा के लिए प्रत्येक बात कही और सुनी जा सकती है ।

महाराणा—तो सुनो...अपना हृदय पत्थर का बना कर सुनो ! अजीतसिंह ने यह प्रस्ताव किया कि अम्बर, मारवाड़ और मेवाड़ के सहस्रों सैनिकों के रक्त में मेवाड़ को नहलाने की अपेक्षा यह उचित होगा कि युद्ध का कारण ही दूर कर दिया जाय ।

महारानी—कारण ही दूर कर दिया जाय ? मैं कुछ समझी नहीं ।

महाराणा—बात यह है कि व्यर्थ के युद्ध की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि कृष्णा को मृत्यु दण्ड.....

महारानी—(बीच ही में) ओह महाराणा ! यह आप क्या.....

यह आप क्या कह रहे है बेचारी कृष्णा, मेरी कृष्णा को.....मेरी कृष्णा को यह दण्ड ! ऐसा नहीं हो सकता.....ऐसा नहीं ही सकता.....

(जवानसिंह का प्रवेश)

महाराणा—कौन ? कुंवर जवानसिंह ! तुम यहाँ हो, तुम्हारी कमर में खुली हुई कटार है, पर उस पर रक्त का कोई धब्बा नहीं है ? अब कटार पर मेरे रक्त का धब्बा लगेगा ।

जवानसिंह—महाराणा मुझे क्षमा करे । मैं कृष्णा के कक्ष में कटार लेकर गया था, लेकिन कृष्णा मुझे मिली नहीं । देवला ने कहा कि वह स्नानागार में है । मैं वहीं से वापस लौट रहा हूँ ।

महारानी—(करुण स्वर में) मेरी कृष्णा, मेरी कृष्णा ! मैं कृष्णा पर यह दण्ड होते हुए नहीं देखूंगी ! मैं कृष्णा के पास जाऊँगी, अभी जाऊँगी ! मेरी कृष्णा (चीखते हुए) मेरी कृष्णा कृष्णा (प्रस्थान)

महाराणा—(विह्वल कण्ठ से) गई ! माँ का हृदय !! माँ की ममता!!! कुंवर जवानसिंह अब इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है कि मैं अपने प्राण दे दूँ । न तो मातृ-भूमि की दुर्दशा ही देखूंगा न ही अपनी कृष्णा का प्राणदण्ड ! !

(कृष्णाकुमारी का प्रवेश)

कृष्णा—(संयत स्वर में) यह तो बहुत सरल है, पिताजी ! आप की कृष्णा हँसते-हँसते इस दण्ड को स्वीकार करेगी ।

महाराणा—(चीख कर) ओह कृष्णा ! तू यहाँ कहाँ, मेरी बेटी ? तू ने कुछ सुना तो नहीं ?

कृष्णा—मैंने सब सुन लिया है, पिताजी !

सहाराणा—(विह्वल स्वर में) नहीं बेटी ! यह भूठ है, बिल्कुल भूठ है । जो अपनी शक्ति का लोहा शत्रु से नहीं मनवा सकते, वे ही ऐसी बातें कह सकते हैं !

कृष्णा—नहीं पिताजी ! चूड़ावत अजीतसिंह ने जो प्रस्ताव किया है वह अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए है । मैं उस प्रस्ताव से सहमत हूँ । आप मुझे प्राणदण्ड दीजिए ।

सहाराणा—किस अपराध पर दूँ, बेटी, तू मेरे हृदय से पूछ कि मैं संसार की सारी सम्पदा प्राप्त कर भी तुझे नहीं खोना चाहता ।

कृष्णा—किन्तु पिताजी ! मातृभूमि सारे संसार की सम्पदा से भी अधिक मूल्यवान् है और उसकी रक्षा मुझे प्राण देकर भी करनी चाहिए !

सहाराणा—कृष्णा ! तेरे प्राणों का मूल्य जानती है क्या है ? सनस्त राजपूतों की कायरता का ज्वलन्त उदाहरण ! क्या तू राजपूतों को सदैव के लिए कलंकित करना चाहती है ?

कृष्णा—पिताजी ! राजपूतों के मस्तक पर कलंक तो इस बात से लगेगा कि उन्होंने एक पुत्री के मोह में अपनी मातृभूमि के पवित्र मस्तक पर शत्रुओं के पैरों के चिह्न लग जाने दिए । क्या एक फूल को बचाने के लिए माली अपने सारे बाग में आग लगा दे ?

सहाराणा—बेटी ! तू मेवाड़ की शोभा है ! तेरे बिना मेवाड़ वसन्त की भाँति हो जाएगा । और तब वीरों की वाणी शृगालों के कोलाहल से अधिक नहीं रहेगी । उन की तलवार वच्चों के खिलवाड़ की वस्तु बन जायगी ।

कृष्णा—पिता जी, मेवाड़ की रही-सही जो शोभा है, उसे मेरे

कारण नष्ट न होने दीजिये । महाराणी पद्मिनी के कारण मेवाड़ में मृत्यु नाची थी । उस इतिहास के दुहराने का अवसर न आने दीजिए, पिता जी ! ये सच्चे स्वामिभक्त मेवाड़-निवासी, जिन्होंने वर्षों युद्ध और विपत्ति में मेवाड़ का साथ दिया है, मेरे अकेले जीवन के लिए युद्ध की बलि बने ? मेरी सुन्दरता के पीछे ? जो आज है, कल नहीं ! फिर यह आज ही समाप्त क्यों न हो जाय ? (कुंवर जवानसिंह से) कुंवर चाचा ! निकालो अपनी कटार और सुन्दरता के छद्मवेश में छिपे इस जीवन को समाप्त कर दो.....

महाराणा—(क्रन्दन के स्वर में) ओह, मुझ से यह देखा नहीं जायगा ! नहीं देखा जायगा ! महारानी कहाँ हैं, कहाँ हैं महारानी ! (पुकार कर) महारानी.....(जाते हुए) महारानी.....महारानी.....(प्रस्थान)

कृष्णा—(दृढ़ता से) कुंवर चाचा ! मैंने सब बातें सुन ली हैं । अच्छा होता यदि मैं तुम्हें पहले ही मिल जाती और तुम अपना काम पूरा कर लेते । कुंवर चाचा ! मातृभूमि की रक्षा के लिए राजस्थान की नारियों ने क्या नहीं किया ?

जवानसिंह—(करुण स्वर में) कृष्णा !

कृष्णा—कुंवर चाचा, यदि मैं पुत्री न होकर पुत्र होती, तो क्या आप मुझे मातृ-भूमि की रक्षा के लिए तलवार लेकर युद्ध में जाने की आज्ञा न देते ? मैं दुर्भाग्य से पुत्री हूँ, तो क्या मुझ अपनी मातृभूमि के लिए मरने की आज्ञा न मिलेगी ? मेरे कारण उदयपुर की भूमि अपवित्र हो यह मैं सहन नहीं कर सकूंगी !

जवानसिंह—(शान्त स्वर में) कृष्णा, तू धन्य है । तेरे-जैसी

बालिकाओं से ही मेवाड़ की कीर्ति संसार में जागती रहेगी ।

कृष्णा—तो कुँवर चाचा ! आप अपनी कटार उठाइए और रक्त के अमृत से मुझे अमर कर दीजिए !

जयानसिंह—बेटी ! मैं क्या कहूँ ? चूडावत अजीतसिंह की इच्छा से और महाराणा की मौन-स्वीकृति से ही मुझे यह क्रूर कार्य सौपा गया है । बतला मैं क्या करूँ ?

कृष्णा—जो प्रत्येक राजपूत को करना चाहिए ! जब जयपुर और जोधपुर दोनों ही उदयपुर के रक्त-पात का व्रत ले चुके हैं, तो उन्हें ऐसा रक्त देना चाहिए, जो उनके कण्ठ में आग की लपट बनकर उनकी तृष्णा सदैव के लिए शान्त करदे !

जयानसिंह—तू ठीक कह रही है, बेटी ! पर मुझ से यह न होगा..... यह न होगा !

कृष्णा—कुँवर चाचा ! आप राजाज्ञा की अवहेलना कर रहे हैं । मातृभूमि के अपमान के साथ ही साथ आप अपने महाराणा की भी अवज्ञा कर रहे हैं ।

जयानसिंह—मैं इस अवज्ञा का दण्ड सहन कर लूंगा ।

कृष्णा—पर कुँवर चाचा ! मेवाड़ की जन्मभूमि आप को कभी क्षमा नहीं कर सकेगी ! अमीरखाँ की सहायता से जोधपुर और जयपुर हमारे नगर पर टूट पड़ेंगे और हमारी मातृभूमि श्मशान बन जायगी ! मैं कहती हूँ, कुँवर चाचा । मेरी मृत्यु से जयपुर और जोधपुर दोनों राजवंशों का क्रोध समाप्त हो जायगा और शत्रुओं का हृदय ऐसी करुणा से भर जायगा कि उदयपुर पर आने वाली और विपत्तियाँ भी दूर हो जायँगी !

जयानसिंह—ऐसी बात है, तब कृष्णा ! मैं यह राजाज्ञा पूरी

करूँगा ! भुकाओ अपना सिर, मैं एक ही प्रहार से इसे काटकर मेवाड़-भूमि को समर्पित कर दूँ !

कृष्णा—(हर्ष से गद्गद होकर) आप धन्य हैं चाचा ! ओह, आप कितने धन्य हैं ! अपने चाचा के हाथों से मृत्यु का सुख पाऊँगी, इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य और क्या होगा ।
कुँवर चाचा ! आप कितने महान् हैं !

जवानसिंह—पर बेटी ! मेरा हृदय काँप रहा है ! अपने ही हाथ से अपनी इतनी सुन्दर बेटी को इस निर्दयता.....

कृष्णा—कुँवर चाचा ! आप भी तो तेजस्वी राजपूत हैं, आप को यह निर्बलता शोभा नहीं देती ।

जवानसिंह—कृष्णा बेटी ! फिर हमारा इतिहास भी यह लिखेगा कि कुँवर जवानसिंह ने—निष्ठुर और कायर जवानसिंह ने—निरपराध कृष्णा के रक्त से अपने हाथ कलंकित किए ! नहीं कृष्णा ! यह नहीं होगा !

कृष्णा—पर आप चूड़ावत अजीतसिंह के सामने इस कार्य को पूरा करने का वचन दे चुके हैं । राजपूत को अपने वचनों का पालन करना चाहिए ।

जवानसिंह—मैंने वचन अवश्य दिया था, पर कृष्णा ! तुझे देख कर उस वचन के प्रति मेरे मन में अपने आप से घृणा होती है ! और जब तूने कोई विरोध नहीं किया—क्रोध नहीं किया और भोली हरिणी के समान आत्म-समर्पण कर दिया, तो मैं किस शक्ति से तेरे कोमल शरीर को शिकारी की भाँति शस्त्र से बेध दूँ । अमृत के कुण्ड में हलाहल की वर्षा कर दूँ । और कपूर के समान तेरे सुन्दर शरीर में लपकती हुई ज्वाला भर दूँ । इन हाथों को कलंकित करने

कृष्णा—कुंवर चाचा ! आप नारियो की कृष्णा लेकर मेवाड़ का उद्धार नहीं कर सकेंगे । और चाचा, वीरों के हाथ से कलंक भी साका बन जाता है । फिर यह तो बलिदान है, बलिदान से हाथ पवित्र होता है, कलंकित नहीं ! यह बलिदान है ! कुल-लक्ष्मी की पूजा है !

जवानसिंह—कुल-लक्ष्मी की पूजा !

कृष्णा—निस्सन्देह, कुंवर चाचा ! यह कुल-लक्ष्मी की पूजा है, अर्चना है !

जवानसिंह—तो फिर, तो फिर उठाऊँ अपनी कटार !

कृष्णा—कुंवर चाचा, आप धन्य हैं ! मातृभूमि की रक्षा के लिये आपका उत्साह ही कसौटी पर कसा गया है । मन की निर्बलता पर आपके राजपूती हृदय ने विजय प्राप्त की ।

जवानसिंह—तब यह रही कटार । इसे आज संसार के सब से कोमल शरीर में प्रवेश पाने का सौभाग्य मिलेगा । मेरी कटार ! तू धन्य है कि आज राजस्थान में एक अमर बलिदान की विधात्री बन रही है । तेरी हल्की-सी गति से कठोर-से-कठोर चीज कटकर टुकड़े-टुकड़े हो सकती है ! अब तू कृष्णा के शरीर की कोमलता का स्पर्श कर । उसका शरीर ही तेरा नवीन म्यान बन जाय ।

कृष्णा—चाचा ! आपके हृदय की दृढ़ता अमर हो !

जवानसिंह—कृष्णा ! तू मेवाड़ की स्त्रियों में धन्य है । इतिहास तेरे चरित्र से अनन्तकाल तक प्रकाशित रहेगा । राजस्थान की नारियाँ तेरे यश के गीत गावगी । तेरा मरण राजस्थान का त्योहार होगा, पर्व होगा ।

कृष्णा—चाचा ! मैं मातृभूमि की वन्दना कर लूँ ! मेरी मेवाड़-

जननी ! मेरा शरीर धन्य है कि उसका रक्त तुम्हारे चरणों का प्रक्षालन करेगा ! मुझे अपनी गोद ही में जन्म देना, जिससे मैं तुम्हारी रक्षा में अपने प्राणों की बलि फिर दे सकूँ ! जननी जन्मभूमि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है !

जवानसिंह—कृष्णा !

कृष्णा—कुंवर चाचा ! आपका हाथ क्यों काँप रहा है ?

जवानसिंह—नहीं कृष्णा ! मेरा हाथ भाग्य की तरह कठिन है ! भुकाओ अपना सिर ।

कृष्णा—मेरे सिर भुंकाने से मेरे मेवाड़ का सिर ऊँचा हो !

(सिर भुकाती है ।)

जवानसिंह—तो फिर यह उठी कटार ! (अपने हाथ के कड़े पर शब्द करता हुआ कटार ऊपर उठाता है । जय एकलिंग ! ...

...(करुण स्वर में) ओह मेरा हाथ काँप रहा है !

यह कटार मुझ से संभल नहीं सकती ! (कटार के गिरने की आवाज) मैं हत्या नहीं कर सकता ! इतने कोमल शरीर पर यह क्रूरता ! नहीं, नहीं !

कृष्णा—कुंवर चाचा !

जवानसिंह—बेटी कृष्णा ! कुंवर चाचा को क्षमा करो ! उससे यह काम नहीं होगा..... (प्रस्थान करते हुए) नहीं होगा...

...नहीं होगा.....नहीं होगा (प्रस्थान)

कृष्णा—चले गए ? कहते हैं, मुझ से यह काम नहीं होगा..... नहीं होगा, तो किससे होगा ?

(देवला का प्रवेश)

देवला—राजकुमारी ! कुंवर चाचा भागते हुए क्यों चले गए ? 'नहीं होगा', 'नहीं होगा' कहते हुए निकल गए !

कृष्णा—क्या बताऊँ क्यों निकल गए ? देवला ! मेरा दुर्भाग्य सब जगह मेरा रास्ता रोक लेता है

देवला—अब तक आपकी उदासी नहीं गई ; राजकुमारी ?

कृष्णा—उदासी ? उदासी नहीं देवला ! यह तो जीवन का महान् पर्व है !

देवला—तो राजकुमारी ! मैंने भी इस महान् पर्व पर आपकी इच्छानुसार एक बहुत सुन्दर माला गूँथी है । उससे भगवान् एकलिंग की पूजा में शोभा आ जायगी ।

कृष्णा—बहुत बड़ी शोभा आ जायगी, तू बहुत अच्छी है, देवला ! तूने माला तो गूँथ ही ली ; बस एक काम और कर ।

देवला—वह क्या, राजकुमारी ?

कृष्णा—भगवान् एकलिंग के लिए विष का एक पात्र !

देवला—(चीँककर) विष का पात्र !

कृष्णा—हाँ देवला ! भगवान् ने विश्व-कल्याण के लिए कितनी उमंग से मुस्कान के साथ विष-पान किया था ! इसीलिये उनका एक नाम नीलकण्ठ भी है । आज मैं भगवान् को उन्हीं का प्रिय नैवेद्य लगाऊँगी । हलाहल विष !

देवला—राजकुमारी, क्या हलाहल विष भी नैवेद्य की सामग्री है ?

कृष्णा—नैवेद्य की सामग्री तो भक्ति-भावना पर निर्भर रहती है । आज मेरी भक्ति उस सीमा पर पहुँच गई है, देवला ! जहाँ हलाहल भी नैवेद्य की सामग्री बन जाता है ।

देवला—किन्तु राजकुमारी ! विष को नैवेद्य की सामग्री बना कर आदर न दीजिए ।

कृष्णा—क्यों ?

देवला—इसलिए, राजकुमारी ! कि नैवेद्य की सामग्री भगवान्

को अर्पित करने के बाद व्यर्थ नहीं जाएगी । महाप्रसाद मानकर ग्रहण करने की आवश्यकता होगी ।

कृष्णा—तुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए !

देवला—फिर उस नैवेद्य के प्रसाद को ग्रहण कौन करेगा ?

कृष्णा—मैं !

देवला—आप ?

कृष्णा—हाँ देवला ! महाप्रसाद को ग्रहण करने में संकोच कैसा ? मैं उस महाप्रसाद को ग्रहण करके अमर हो जाऊँगी ।

देवला—किन्तु राजकुमारी ! मेरी प्रार्थना है कि इस प्रसाद को आप ग्रहण न करें । यदि ग्रहण करने की आवश्यकता होगी, तो मैं ग्रहण कर लूँगी । देवला के रहते राजकुमारी के लिए यह अवसर न आयगा ।

कृष्णा—तब तो तू स्वार्थी है, देवला ! महापुण्य की भागिनी तू ही होना चाहती है और अपनी राजकुमारी के महापुण्य को तू छीनना चाहती है । स्वार्थी ! (दबी हुई हँसी)

देवला—तब राजकुमारी ! हलाहल के पात्र की आज्ञा न दीजिए !

कृष्णा—मेरी भक्ति-भावना पर कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगा सकता, देवला ! तू स्वयं जानती है कि राजमन्दिर के विषय में बात पूछी नहीं जाती, या तो कही जाती है, या सुनी जाती है !

देवला—मैं जानती हूँ, राजकुमारी ! इसीलिए प्रार्थना करना चाहती हूँ ।

कृष्णा—कौन सी प्रार्थना ?

देवला—यही कि यदि हलाहल विष को आप नैवेद्य की सामग्री बनाना ही चाहती हैं, तो उस महाप्रसाद का अभिषिचन

उस स्थान पर कर दिया जाय, जहाँ मेवाड़ की नारियों ने अपनी आत्मरक्षा के लिए जौहर की ज्वाला जलाई थी। इस महाप्रसाद के पाने का अधिकार उन्हीं नारियों को हो, जिन्होंने मेवाड़ के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया हो !

कृष्णा—(दुहराते हुए) इस प्रसाद को पाने का अधिकार उन्हीं नारियों को हो जिन्होंने मेवाड़ के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया हो !

देवला—हाँ राजकुमारी !

कृष्णा—मैं तुम से सहमत हूँ। तू जा, हलाहल प्रस्तुत कर !

देवला—जो राजकुमारी की इच्छा। (प्रस्थान)

कृष्णा—देवला ! बेचारी देवला ! महाप्रसाद के नाम से सशंकित हो उठी ! कही मैं पान न कर लूँ किन्तु उसके कथनानुसार मैं भी तो उसे पान करने की अधिकारिणी हो सकती हूँ, जब मैंने अपने मेवाड़ के लिए जीवन उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया है !

[महाराणा और महारानी का प्रवेश]

महाराणा—महारानी !

महारानी—महाराणा ! आपकी बातों से मुझे सन्तोष नहीं होता। मैं यह सब अपनी आँखों से कैसे देख सकूंगी !

महाराणा—(धीरे से) कुँवर जवानसिंह यदि असफल न होते, तो यह बात ही नहीं होती !

महारानी—जवानसिंह मनुष्य है। वह पशु नहीं हो गया है।

कृष्णा—किन्तु माँ ! इतना मोह, इतनी ममता से भी कहीं राज-पूत अपने जीवन का आदर्श पा सकता है ? कुँवर चाचा ने मुझे निराश कर दिया। उन्होंने मुझे अपने कर्त्तव्य

के पालन में सहायता नहीं दी। कहीं तुम भी ममता के वशीभूत हो मुझे कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित न कर दो !
महारानी—कृष्णा, क्या तू ने इसीलिए जन्म लिया था कि मैं अपनी आँखों के सामने यह भयंकर काण्ड होते देखूँ ?
कृष्णा—माँ, तुम वीरमाता हो और मैं वीर कन्या हूँ ! मैं भी तो अपनी मातृभूमि की रक्षा का अधिकार रखती हूँ ! मैं तुम्हारे अमृत को लज्जित नहीं करूँगी ।

महारानी—बेटी तू धन्य है ! पर तेरा अपराध ही क्या है ?

कृष्णा—माँ ! 'वलिदान अपराध पर निर्भर नहीं है' ! मेवाड़ की रक्षा के लिए राजस्थान की नारियों ने क्या नहीं किया ? माँ ! तुम ऐसा आदर्श उपस्थित करो कि प्रत्येक माँ अपने मातृत्व में गौरव का अनुभव करे । माँ ! तुम यह घोषणा कर दो कि माँ अपने शिशु को अमृतमय दूध पिलाकर बड़ा करती है केवल इसलिए कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा में विषपान कर सके । तुम मुझे एक विष का पात्र दे दो माँ !

महारानी—नहीं बेटी ! यह मैं कभी नहीं कर सकूँगी !
(सिसकती है ।)

कृष्णा—माँ ! क्या जौहर की ज्वाला में जलने से पहले माताओं ने अपने गोद के वच्चों को चूम कर अग्नि में होम नहीं दिया ! तुम भी मुझे विष का प्याला देकर इस जौहर की परम्परा पर आँच न आने दो !

महारानी—बेटी ! तू यह क्या कह रही है ! कहाँ मैं सोच रही थी कि कुछ दिनों में अपनी कृष्णा के विवाह का उत्सव मनाऊँगी । सारे राजस्थान की नारियों को निन्त्रण दूँगी कि वे कृष्णा को मुहाग का आशीर्वाद दे । नगर की स्त्रियाँ

धवल मंगल करके झरोखों में चढ़-चढ़कर गातीं ; पट-मण्डप छाए जाते; मंगल-कलश बाँधे जाते; कृष्णा का रत्नों से सिंगार होता ; मोतियों से माँग सँवारी जाती ; मैं महलों की जाली से सब उत्सव देखती ! हाय, मेरी कृष्णा ! (सिसकने लगती है।)

कृष्णा—(सान्त्वना के स्वर में) माँ ! सिसोदिया-वंश में सन्तान का मोह कलंक है। यह कलंक अपने ऊपर मत आने दो।

महारानी—(करुण स्वर में) बेटी ! तुझ से मैं क्या कहूँ ! किन्तु क्या माँ भी अपनी बेटी को विष दे सकती है ?

कृष्णा—माँ ! मैं आज तुम से अन्तिम वरदान माँगती हूँ, जो एक राजपूत रमणी अपनी पुत्री को उस समय देती है, जब उसका और उसकी मातृभूमि का सम्मान संकट में हो। माँ मेरी याचना स्वीकार करो !

महारानी—(सिसकते हुए) यह मुझ से कैसे होगा, बेटी ?

कृष्णा—माँ ! विष तो मैं स्वयं भी पी सकती हूँ, किन्तु माता के हाथ से पीने में वह विष भी अमृत हो जाएगा ! (आग्रह के स्वर में) माँ मेरी प्रार्थना मान लो। जिस शरीर की रक्षा नौ मास तक तुम ने अपने उदर में इतनी सावधानी से की, क्या उसकी सम्मान-रक्षा अब तुम नहीं करोगी ? तुम माँ हो, बेटी की प्रत्येक प्रकार की रक्षा तुम्हें ही करनी है।

महारानी—(रोते हुए) मैं इसे कैसे अस्वीकार करूँ, बेटी ! पर मैं अपनी कृष्णा को विष कैसे दे सकूंगी ? (रोते हुए प्रस्थान)

कृष्णा—(महाराणा से) पिता जी ! आप इतने उदास न हों। आप ने मेवाड़ की रक्षा कर ली है ! आपने इस समय अपने विवेक का परिचय दिया है।

महाराणा—कृष्णा ! तू नहीं जानती कि इस समय मेरा हृदय कितना हाहाकार कर रहा है !

कृष्णा—नहीं पिता जी ! राजस्थान में कन्याएँ तो जन्म से ही मृत्यु को सौप दी जाती हैं । आपने मुझे इतने वर्ष का वरदान देकर मुझ पर कितना उपकार किया है ! यह आपका दिया जीवन यदि आपके चरणों में ही समर्पित कर दूँ, तो वह मेरा कर्त्तव्य ही होगा !

महाराणा—(करुण स्वर में) कृष्णा !

कृष्णा—और पिता जी ! आज तक राजस्थान में नारियों ने न जाने कितने सम्मिलित जौहर किए हैं, यदि आज मैं अकेली ही जौहर करूँ, तो क्या आप को सुख और संतोष नहीं होगा ? मैं अपने पिता की..... (महारानी एक भरा हुआ पात्र लेकर आती है) ओह, तुम कितनी महान् हो, माँ ! यह विष का प्याला लेकर तुम आ गई ! तुम ने राजपूतों की माता के सामने ही नहीं, समस्त संसार की माताओं के सामने आत्म-सम्मान का उज्ज्वल आदर्श रखा है । माँ ! तुम धन्य हो ! (पात्र हाथ में लेती है) मेरा प्रणाम स्वीकार करो ! पिता जी ! आप को मेरा प्रणाम है ! प्राणों से प्यारी अपनी मेवाड़ भूमि के प्रति और प्रत्येक राजपूत नारी के प्रति मेरी मंगल-कामना स्वीकार हो ! जय एकलिंग ! (भरा हुआ पात्र ओठों से लगा कर पी जाती है।)

महाराणा—(चीखकर) कृष्णा ! मेरी बेटी कृष्णा !

कृष्णा—(एक क्षण के बाद) माँ ! तुम ने धोखा दिया है । विष के प्याले के स्थान पर तुम ने कुसुम्भा का मधुर पात्र दे दिया ! हाय री माँ की ममता ! तुम्हारे इस प्रेम को मैं क्या कहूँ !

महाराणा—क्या यह विष का पात्र नहीं है ?

कृष्णा—नहीं पिता जी ! विष-पात्र भी हो, तो वह स्नेहमयी जननी के हाथों से अमृत-पात्र हो जायगा । अब भगवान् एकलिंग को मैं जिस विष का नैवेद्य लगाऊँगी, वही महा-प्रसाद मैं ग्रहण करूँगी । वही मेरे भाग्य का सब से बड़ा वरदान होगा ! माँ ! अन्तिम विदा लेती हूँ । तुम्हें और पिता जी को प्रणाम ! जय मेवाड़..... (प्रस्थान)

महारानी—(क्रन्दन के स्वर में) देटी ! देटी !! कृष्णा !!! (पीछे-पीछे शीघ्रता से जाती है । नेपथ्य से.....'देटी-देटी, कृष्णा !)

महाराणा—(शिथिल स्वर में) मेवाड़ को इस सुकुमार बलि की भी आवश्यकता थी !यह राजपूतों के जीवन की सब से बड़ी हार है ! सब से बड़ा कलंक है !

[नेपथ्य में बड़ी हलचल होती है । शक्तावत सरदार संग्रामसिंह कहते हैं : मुझे मत रोको । मैं महाराणा से मिलकर ही रहूँगा ।]

(खड़खड़ाहट के साथ संग्रामसिंह का प्रवेश)

संग्रामसिंह—महाराणा !

महाराणा—कौन शक्तावत संग्रामसिंह !

संग्रामसिंह—महाराणा ! क्या यह सच है कि चूड़ावत अजीत सिंह के कहने से आपने जवानसिंह को कृष्णाकुमारी की हत्या के लिए नियुक्त किया और वह सफल नहीं हुआ ?

महाराणा—मैं इसका उत्तर नहीं दे सकूँगा ।

संग्रामसिंह—क्योंकि यह सच है ! क्या यह भी सच नहीं है कि कृष्णाकुमारी ने राजपूतों की वीरता पर कलंक लगाने वाले कायरों और नपुंसकों की तरह समझा है और त्वयं विषपान करने का जौहर अपने ऊपर लिया है ? क्या देवला का यह कथन सत्य नहीं है कि राजकुमारी ने आप

की चिन्ता दूर करने के लिए एकलिंग को हलाहल का नैवेद्य चढ़कर स्वयं उसे पीने का प्रण किया है ?

महाराणा—(गिथिल स्वर में) सत्य है, संग्रामसिंह ! अमीरखाँ से रक्षा पाने का और कोई उपाय नहीं था !

संग्रामसिंह—(आवेष्ट में) तो यह कहिए कि राजपूत की तलवार का पानी उतर चुका है ! मेवाड़ की राजकुमारी अपने आत्म-सम्मान के लिए मृत्यु से सहायता माँगे और जोंक की तरह जीवन से चिपटे हुए राजपूत मातृभूमि का रक्त चूसते रहे ? और जब कृष्णा को मृत्यु-दण्ड दिया गया तो आपने मेवाड़ के सैनिकों को आत्महत्या की आज्ञा नहीं दी ? आपकी कमर से यह तलवार लटकती रही और आपने इसके टुकड़े-टुकड़े नहीं किए ? असमर्थता का राग अलापने वाला पिता क्या कन्या से पहले विष पान नहीं कर सकता था ?

महाराणा—(चीख कर) संग्रामसिंह !

संग्रामसिंह—मुझे किसी बात का भय नहीं है ! मैंने महाराज शक्तिसिंह के वंश में जन्म लिया है, जिन्होंने विपत्ति में महाराणा प्रताप की रक्षा की ! मुझे विलम्ब से सूचना मिली, नहीं तो कृष्णा का जीवन घरौंदे की तरह नष्ट न किया जा सकता और उस कायर-कलकी अजीतसिंह का प्रस्ताव आपने माना ही क्यों ? क्या इससे सारी राजपूत जाति हमें के लिए लांछित नहीं हुई ? क्या अमीरखाँ पठान ने मेवाड़ को नष्ट कर दिया ? और क्या वेचारी कृष्णा के मरने से उदयपुर हमें के लिए सुरक्षित हो गया ? अमीरखाँ अगर सामने था, तो क्या अजीतसिंह अपने पूर्वजों की तरह मर नहीं सकता था ? मरने की चुनौती

पर मैं—संग्रामसिंह—सब से पहले पूर्वजों का ऋण चुकाता ! लेकिन यह बात मुझ से छिपाकर रखी गई । अजीतसिंह ही आपका सर्वस्व था, जो तलवार लेकर शत्रुओं पर कूदना नहीं जानता, जानता है एक अबोध कन्या की हत्या से शत्रु के अट्टहास में अपनी निर्लज्ज हँसी मिलाना ।

महाराणा—संग्रामसिंह ! तुम सुनो !

संग्रामसिंह—नहीं सूनूंगा, महाराणा ! राजनीति की बातें सुनने का अवकाश नहीं है । जो राज्य अपनी राजपुत्री की रक्षा नहीं कर सका, उसे नष्ट हो जाना चाहिए ! जो पिता अपनी पुत्री की हत्या के षड्यंत्र में शामिल हो, वह पिता.....

महाराणा—खामोश, संग्रामसिंह !

संग्रामसिंह—यह लीजिए तलवार ! इसे वापस लौटाता हूँ । (तलवार फेकता है) युगों से यह तलवार हमारे वंश में रही है । इसने उदयपुर की सेवा में सहस्रों मस्तकों को काटा है । हमारे पूर्वजों ने इसी से इस राजवंश की सेवा की है । कृष्णा की इस लज्जाजनक मृत्यु के बाद यह तलवार हमारे वंश में नहीं रहेगी ! आज से हमारी तलवार इस राज्य से विदा हुई । इस गिरी हुई तलवार को तोड़ डालिए या अपनी कन्या के मृत शरीर पर इस तलवार से फिर प्रहार कीजिए । जय एकलिंग (प्रस्थान)

महाराणा—संग्रामसिंह ! संग्रामसिंह !

(महारानी का देवला के साथ सिसकते हुए प्रवेश)

महारानी—(करुण कण्ठ से सिसकियाँ लेती हुई) मेरी कृष्णा ! मेरी कृष्णा.....अब इस संसार में.....नहीं रही....

महाराणा—(विह्वल स्वर में) कृष्णा !

देवला—(सिसकते हुए) महारानी मूर्छित हो गई थीं । मेरे रोकने पर भी राजकुमारी ने तीन बार विष-पान किया । तीनों बार वमन के द्वारा वह निकल गया । अन्त में उन्होंने गहरी अफ़ीम के कुसुम्भा को हँसते हुए पान किया ! महाराज एकलिंग को प्रणाम कर वे सदा के लिए गहरी नीद में सो गई !

महारानी—(चीख कर) मेरी कृष्णा !

महाराणा—(कातर होकर) मुझे धिक्कार है ।

महारानी—काला जहर उसके सारे शरीर में फैल गया ! क्या कोई उस जहर को नहीं उतार सकता ?

(द्वार पर सँपेरे की बीन सुनाई पड़ती है)

देवला—साँप के जहर की तरह इसका जहर नहीं उतरेगा ?

महाराणा—वह जहर अब नहीं उतर सकेगा, महारानी ! उस का जहर ग्रौर मेरी कलंक-रेखा सदा के लिए अमर हो गई !

[रानी की गहरी सिसकी । दूर से आती हुई सँपेरे की बीन सुनाई पड़ रही है ।]

सेठ गोविन्ददास—

सच्चा धर्म

[एक ऐतिहासिक एकांकी]

नाटक के पात्र

पुरुषोत्तम—दिल्ली निवासी एक महाराष्ट्री ब्राह्मण ।

अहल्या—पुरुषोत्तम की पत्नी

संभाजी—शिवा जी का पुत्र

दिलावरखाँ—औरंगजेब की खुफ़िया जमात का एक सरदार ।

रहमानबेग—दिलावरखाँ का मातहत ।

पहला दृश्य

स्थान—दिल्ली में पुरुषोत्तम के मकान का कमरा ।

समय—मध्याह्न के निकट

[कमरा एक छोटे से मकान के एक छोटे से कमरे के सदृश दिखाई देता है । दीवाने स्वच्छता से पुती है । दीवारों में जो दरवाजे, खिड़कियाँ हैं उनसे बाहर की एक तंग गली के कुछ मकान दिखाई पड़ते हैं । एक दरवाजे से नीचे उतरने के लिए जीने की कुछ सीढ़ियाँ दिखाई देती हैं । कमरे की छत में काँच की कुछ हड्डियाँ लटक रही हैं । कमरे की जमीन पर आधे में बिछावन है और आधा खाली । कमरे में पुरुषोत्तम बेचैनी से इधर-उधर टहल रहा है । पुरुषोत्तम की अवस्था लगभग साठ वर्ष

की है । वह गेहुँएँ रङ्ग और साधारण गरीर का मनुष्य है । सिर के बाल मराठी ढङ्ग के हैं, अर्थात् पीछे चौड़ी शिखा है, उसके चारो ओर छोटे-छोटे बाल और उनके चारो तरफ के बाल मुड़े हुए । मुख पर बड़ी-बड़ी मूछे हैं । सारे बाल तीन चौथाई से अधिक सफेद हैं । वह लाल रङ्ग का रेशमी उपरना ओढ़े है और उसी रङ्ग का रेशमी चोला पहने है । उसके सिर पर श्वेत चन्दन का त्रिपुण्ड्र लगा है और वक्ष स्थल पर मोटा यजोपवीत दिखाई देता है । (अहल्या का प्रवेश) । अहत्या करीब ५५ वर्ष की अवस्था की गेहुँएँ रङ्ग और स्थूल शरीर की स्त्री है । बाल बहुत से सफेद हो गए हैं । वह मराठी ढङ्ग की लाल चारखाने की साड़ी और वैसी ही चोली पहने है । कुछ सोने के आभूषण भी पहने है ।]

अहल्या—अभी भी.....अभी भी वही हाल है, कोई निर्णय नहीं हो सका ?

पुरुषोत्तम—(खड़े होकर) अहल्या, प्रश्न कोई साधारण प्रश्न है ?

अहल्या—(बैठ कर) कम-से-कम तुम सदृश सत्यवादी व्यक्ति के लिए तो ऐसे प्रश्नों में असाधारणता नहीं होनी चाहिए । जन्म भर तुम्हारा सत्य-व्रत अटल रहा । तुम सदा कहते रहे हो कि जीवन में यदि मनुष्य एक सत्य का आश्रय लिए रहे तो वह सत्य स्वयं ही सारे प्रश्नों का निराकरण कर देता है, पर जब मनुष्य सत्य का आश्रय छोड़ मिथ्या का आसरा लेता है, तभी तरह-तरह के प्रश्न उठ खड़े होते हैं ।

पुरुषोत्तम—(बैठकर आश्चर्य से) सत्य का आश्रय छोड़ मिथ्या का आसरा ? मैं सत्य का आश्रय छोड़ मिथ्या का आसरा ले रहा हूँ ?

अहल्या—और क्या कर रहे हो ? संभाजी को शिवाजी तुम्हारे

पास रख गये हैं, यह क्या सच नहीं है ? जो लड़का तुम्हारे पास रहता है वह तुम्हारा भानजा है, यह कहना सच बोलना है ?

पुरुषोत्तम—संभाजी को संभाजी न कह कर अपना भानजा कहना, शिवाजी मेरे पास संभाजी को नहीं रख गए हैं, यह कहना, साधारण सच बोलने से कहीं बड़ा सत्य है।

अहल्या—तुम्हारी सत्य-प्रियता अधिकांश दिल्ली में प्रसिद्ध है, इसी के कारण यवन तक तुम्हारा आदर करते हैं। हमारे विवाह को चालीस वर्ष हो चुके, परन्तु आज तक मैंने तुम्हारे मुख से कोई मिथ्या वाक्य, मिथ्या शब्द, और मिथ्या शब्द ही नहीं, मिथ्या अक्षर तक न सुना। वही तुम आज बड़ी-से-बड़ी मिथ्या बात कह उसे साधारण सत्य-भाषण से बड़ा सत्य कह रहे हो ?

पुरुषोत्तम—अहल्या, हमारे शास्त्रों में सत्य और असत्य की व्याख्या बड़ी वारीकी से की गई है। अनेक बार असत्य के स्थान पर मिथ्या-भाषण सत्य से बड़ी वस्तु होता है। जीवन में धर्म से बड़ी कोई चीज नहीं, धर्म की रक्षा यदि असत्य से होती है तो असत्य सत्य से बड़ा हो जाता है।

अहल्या—धर्म की रक्षा ! अब तो तुम ने और बड़ी बात कह दी। संभाजी को अपना भानजा बताने से तुम धर्म की रक्षा कर सकोगे ? दिलावरखाँ कह गया है कि उसे वह तुम्हारा भानजा तब मानेगा, जब तुम उसके साथ बैठकर एक थाली में भोजन करोगे ! ब्राह्मण होकर अब्राह्मण के साथ भोजन करने में धर्म-रक्षा हो सकेगी ?

पुरुषोत्तम—(उठकर फिर टहलते हुए) अहल्या, यही.....यही प्रश्न

मुझे व्यथित किए हुए है। जीवन-भर मैंने जिस प्रकार धर्म का पालन किया है, उसे तुम से अधिक और कोई नहीं जानता.....नहींनहीं.....भगवान् तुम से भी अधिक जानते हैं। (फिर बैठकर) मैंने त्रिकाल-संध्या, तर्पण हवन इत्यादि सारे ब्राह्मण-धर्म नियमपूर्वक किए हैं, शौच-अशौच का सारा पूर्ण विवेक रखा है, भक्ष्याभक्ष्य की ओर अधिक-से-अधिक ध्यान दिया है, ब्राह्मण को छोड़कर किसी के हाथ का छुआ जल तक ग्रहण नहीं किया। वहीवही मैं इस चौथेपन में अब्राह्मण के साथ बैठ, एक ही थाली में, कैसे खाऊंगा, यह प्रश्न मुझे व्यथित..... अत्यधिक व्यथित किए हुए है। (फिर दहलते हुए) भगवान् इस चौथेपन में क्या मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं? एक अब्राह्मण के साथ भोजन करा के मुझे भ्रष्ट करना चाहते हैं?

अहल्या—यदि तुमने अब्राह्मण के साथ भोजन किया तो तुम्हीं... तुम्हीं भ्रष्ट न होगे, सारा कुटुम्ब भ्रष्ट हो जायगा। दो-दो कन्याएँ विवाह-योग्य हो गई हैं, किसी ब्राह्मण-कुटुम्ब में उनका विवाह न हो सकेगा। पुत्र का विवाह हो चुका है तो क्या हुआ उसकी सन्तान तक भ्रष्ट हो जायगी, उसका न यज्ञोपवीत होगा और न ब्राह्मणों में विवाह-संस्कार।

पुरुषोत्तम—(अहल्या के निकट बैठकर उसकी ओर देखते हुए) तब... तब क्या कहूँ ?

अहल्या—मैंने तो कहा जन्म-भर जिसके आश्रय में रहे हो, उस सत्य को न छोड़ो। श्रीरंगजेव के सदृश वाडगाह के राज्य में, उसकी राजधानी में, रहते हुए हिन्दू-एक ब्राह्मण होते हुए भी तुम यह सफल-जीवन उसी सत्य-आश्रय के कारण

बिता सके हो। इस चौथेपन में वह आसरा छोड़ने से बुरी और कोई बात नहीं हो सकती, विशेषकर तब जब उस आसरे का सुफल तुम देख चुके हो, अनुभव कर चुके हो धर्म की टेढ़ी-मेढ़ी व्याख्याओं में पड़ अपना जीवन-भर का सीधा मार्ग छोड़ अपने और अपने कुटुम्ब को नष्ट मत करो।

पुरुषोत्तम—तो मैं यह कह दूँ कि वह लड़का शिवाजी का पुत्र संभाजी है, मेरा भानजा नहीं। मिठाई की टोकरी में छिपकर दिल्ली से भागते समय शिवाजी उसे मेरे पास छोड़ गये हैं।

अहल्या—कम-से-कम तुम्हें सत्य बात कहने में पशोपेश होना ही न चाहिए।

पुरुषोत्तम—और इसका परिणाम क्या होगा ?

अहल्या—परिणाम जो कुछ हो, तुम सदा कहते नहीं रहे हो कि सत्य बोलने के सम्मुख परिणाम की ओर मनुष्य को दृष्टि ही नहीं डालनी चाहिए।

[पुरुषोत्तम सिर नीचा कर विचार-मग्न हो जाता है,
कुछ देर निस्तब्धता।]

पुरुषोत्तम—(एकाएक सिर उठाकर) नहीं नहीं.....नहीं नहीं..... यह कभी नहीं हो सकता, यह कभी नहीं हो सकता। यह.....यह विश्वासघात होगा,.....ऐसा...ऐसा पातक जिससे बड़ा पातक सम्भव ही नहीं यह...यह शरणागत का बलिदान होगा। ऐसा...ऐसा दुष्कर्म, जिससे बड़ा दुष्कर्म, हो ही नहीं सकता।

अहल्या—पर दूसरी ओर तुम सत्य को तिलांजलि दे रहे हो... अब्राह्मण के साथ भोजन कर धर्म-भ्रष्ट होने का प्रश्न

तुम्हारे नम्मुख है और स्वयं के भ्रष्ट होने का ही नहीं,
पर नारे कुटुम्ब के नष्ट हो जाने का.....
पुरुषोत्तम—(उठकर दहलते हुए) ओह !ओह !

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान—दिल्ली की एक गली

समय—मध्याह्न के निकट

[तंग गली के कुछ मकान दिखाई पड़ते हैं। दिलावरखाँ और रहमान बेग खड़े हैं। दोनों अवेड अवस्था और गेहुँएँ रंग के ऊँचे-पूरे व्यक्ति हैं। दिलावरखाँ के दाढ़ी भी हैं। दोनों उस समय की सैनिक वस्त्रों लगाये हुए हैं।]

दिलावरखाँ—(विचारते हुए) पंडित पुरुषोत्तमराव भूठ बोलेगे
ऐसा.....ऐसा यकीन तो नहीं होता।

रहमानबेग—जनाव, तमाम देहली में कौन ऐसा होगा, जो उन्हें
जानते हुए यह मानता हो कि वे कभी भूठ बोल सकते हैं।

दिलावरखाँ—(उसी प्रकार विचारते हुए) लेकिन, रहमानबेग, वह
लड़का दक्खनी विरेहमन दिखलाई नहीं देता।

रहमानबेग—सिर्फ सूरत से यह कह सकना कि कौन विरेहमन है
और कौन नहीं, यह बड़ी मुश्किल बात है।

[कुछ देर निस्तब्धता। दिलावरखाँ गंभीरता से सोचता

रहता है और रहमानबेग उनकी तरफ देखता है।]

रहमानबेग—(कुछ देर बाद) फिर आपने तो पंडित की बात पर ही
यकीन करके मामले को नहीं छोड़ दिया, आपने तो उसे
बहुत बड़ा नुबूत देने के लिए कहा है। पुरुषोत्तम की बात
ही काफी है, फिर अगर वह उस लड़के के साथ बैठ कर

खाना खा लेता है, तब तो शक की गुञ्जाइश ही नहीं रह जाती ।

दिलावरखाँ—(सिर उठाकर) हाँ, कोई बिरेहमान किसी नीची क्राँम के साथ बैठकर थोड़े ही खा सकता है ।

रहमानबेग—और दक्खनी बिरेहमन मराठा के साथ चाहे जान निकल जाय तो भी न खायगा ।

दिलावरखाँ—पुरुषोत्तमराव के मानिंद बिरेहमन तो कभी नहीं ।

रहमानबेग—कभी नहीं, कभी नहीं ।

दिलावरखाँ—(ऊपर की ओर देखकर) तो दोपहर तो हो रहा है ।

पूजापाठ के बाद उसने दोपहर को ही खाने के वक्त बुलाया था ।

रहमानबेग—हाँ, वक्त हो रहा है, चलिए ।

[दोनों का प्रस्थान]

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान—पुरुषोत्तम के मकान का एक कमरा ।

समय—मध्याह्न

[दृश्य पहले दृश्य के सदृश ही है । पुरुषोत्तम और अहल्या बैठे हुए हैं । अहल्या का मुख प्रसन्नता से खिल गया है; परन्तु पुरुषोत्तम के मुख पर वैसी ही उद्विग्नता दृष्टिगोचर होती है । पुरुषोत्तम ज़मीन की ओर देख रहा है ।]

अहल्या—(ऊपर की ओर देखकर) धन्यवाद—अगणित बार धन्य-वाद है भगवान् को कि अन्त में सत्य की उसने विजय करा दी । (पुरुषोत्तम की ओर देखकर) दिनभर का भूला भटका यदि रात को भी घर लौट आवे तो वह भूला नहीं

कहलाता । उद्वेग के कारण तुमने एक बार मिथ्या अवश्य बोल दिया, पर देर.....बहुत देर नहीं हुई, अभी भी समय था । दिलावरखाँ के आने के पहले तक समय था । अब उससे सारी बातें सच-सच कह देने पर मिथ्या-भाषण के पाप से तुम मुक्त हो जाओगे । जन्म-भर जिस सत्य का आश्रय रखा है, उसी की शरण में रहने से कोई आपत्ति भी नहीं आयेगी ।

[पुरुषोत्तम कोई उत्तर नहीं देता । अहल्या उसकी ओर देखती है । कुछ देर निस्तब्धता]

अहल्या—(कुछ देर बाद, पुरुषोत्तम की ओर देखते हुए) देखा..... देखा नहीं, एक.....केवल एक बार सत्य का आसरा छोड़ते ही कैसी.....कैसी महान आपत्ति आई । एक मिथ्या को सत्य सिद्ध करने के प्रयत्न में कितनी मिथ्या बातें कहनी पड़ती है । तुम सदृश सत्यवादी से अपने कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण माँगा गया, ऐसा वैसा प्रमाण नहीं, भयंकर प्रमाण, महाभयंकर प्रमाण ! तुम्हारा मराठा के साथ, एक अब्राह्मण के साथ एक थाल में भोजन ! ओह ! यह.....यह कभी संभव था ?

[पुरुषोत्तम फिर नहीं बोलता । फिर दृष्टि उठा अहल्या की ओर देखने लगता है । अहल्या चुपचाप उसकी ओर देखती है । कुछ देर निस्तब्धता ।]

अहल्या—(कुछ देर बाद) जन्म-भर का सारा पूजन-अर्चन समाप्त हो जाता । जीवन-भर के सारे नियम-व्रत भंग हो जाते । न जाने कितने जन्मों के पुण्यों के कारण ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया था और ऐसे शुद्ध ब्राह्मण-कुल में । फिर इस जन्म में भी ब्राह्मण-धर्म का कैसा पालन किया था ! कभी

संध्या न छोड़ी, कभी तर्पण न त्यागा, कभी हवन न छोड़ा, किसी का छुआ जल तक पान न किया था । सब..... सब चला जाता । 'स्वयं'.....स्वयं ही भ्रष्ट न होते, परन्तु.....परन्तु सारा कुल भ्रष्ट हो जाता, लड़कियाँ कुंवारी रह जाती । लड़के की संतति अब्राह्मण हो जाती । (कुछ रुक कर) होता.....होता कैसे ऐसा ? जन्म-भर का सत्-कर्म-पल-भर में नष्ट कैसे हो जाता । भगवान् ऐसा कैसे होने देते ।

[पुरुषोत्तम फिर कुछ नहीं बोलता, पर चुपचाप उठकर टहलने लगता है । अहल्या कुछ देर तक बैठे-बैठे उसकी तरफ देखती रहती है और फिर उठकर उसी के साथ टहलने लगती है ।]

अहल्या—(टहलते-टहलते) और.....और फिर यह सब किसी अपने के लिए नहीं, दूसरे.....दूसरे के लिए ।

[पुरुषोत्तम चुपचाप खड़े होकर अहल्या की ओर देखने लगता है । अहल्या भी खड़ी हो जाती है ।]

अहल्या—हाँ, क्या प्रयोजन है हमें शिवाजी से और उसके इस पुत्र संभाजी से ? दूसरे के लिए हम क्यों अपना इहलोक और परलोक विगाड़ें, स्वयं नष्ट हों और अपने कुल को नष्ट करें ? (कुछ रुक कर) सोचो.....जरा सोचो तो कहीं औरंगजेब को पता लग जाए कि तुमने शिवाजी के पुत्र को आश्रय दिया और.....और उसे बचाने के लिए भूठ बोला.....और.....उस भूठ को सत्य सिद्ध करने के लिए अपने धर्म-कर्म की भी परवाह न कर उसके साथ एक थाल में भोजन तक किया,.....तो.....औरंगजेब के सदृश बादशाह क्या करे तुम्हारा और हमारे सारे कुटुम्ब का ?

[पुरोत्तम फिर भी कुछ न कह कर टहलने लगता है । अहल्या भी उनके साथ टहनती है । कुछ देर निस्तब्धता]

अहल्या—(कुछ देर बाद) ठीक.....ठीक समय भगवान् ने तुम्हें सुशुद्धि दी । सारा हाल सच-सच कह देने से अच्छा निर्णय हो ही नहीं सकता था । परलोक वचा, क्योंकि मराठा के साथ जाने से जो धर्म जाता वह धर्म बच गया । इहलोक वचा, क्योंकि राज्य-भय नहीं रह जायगा । इतना.....इतना ही नहीं, सभाजी को पाते ही,..... तुम्हारे जरिए पाते ही औरगजेव कितना.....कितना खुश होगा तुम पर !.....कदाचित्.....कदाचित् तुम मनसबदार हो जाओ,.....तुम न भी हुए, अर्थात् तुमने यदि मनसबदारी अस्वीकृत भी कर दी, तो..... मनसबदार हो सकता है हमारा लड़का ।.....अरे ! उन लड़कियों का सम्बन्ध तक अच्छे से अच्छे स्थान पर हो सकेगा ।.....कितना.....कितना परिश्रम तुम कर चुके हो इन लड़कियों के लिए योग्य वर ढूँढने का । बादशाह.....हाँ बादशाह की कृपा के पश्चात् कौन... कौन वस्तु दुर्लभ रह जायगी ? (कुछ रुक कर) और..... और यह सब होगा किस कारण.....उसी.....उसी सत्य की शरण के कारण, जिसका जीवनहाँ, जीवन भर तुमने आश्रय रखा है ।

[नेपथ्य में "पडित जी ! पडित जी !" शब्द होता है ।]

अहल्या—(जल्दी में) लो, लो कदाचित् दिलावरखाँ आ गया । अब.....अब सब बातचीत स्पष्ट रूप से कर लो उससे.....(नीघ्रता में प्रस्थान ।)

पुरोत्तम—(जिनके मुख का रंग दिलावरखाँ की आवाज सुन और

ही हो गया है, गला साफ़ करते हुए, खिड़की के पास जा, मुख बाहर निकाल, नीचे देखते हुए) आहाहा ! दिलावरखाँ साहब ! आइए, आ जाइए !

[दिलावरखाँ और रहमानवेग का प्रवेश]

आइए, आइए मैं पूजा से उठ आंफ ही लोगों का रास्ता देख रहा था । वैठिए, वैठिए ।

दिलावरखाँ—(विछायत पर बैठते हुए) आप भी वैठिए पंडित जी [दिलावरखाँ और रहमानवेग विछायत पर बैठ जाते हैं ।]

पुरुषोत्तम—पूजा के पश्चात् भोजन तक मैं किसी वस्त्र आदि का स्पर्श नहीं करता । पहले आपको भ्रंश से मुक्त कर दूँ ।

दिलावरखाँ—(कुछ सहमते हुए) आपके मुआफ़िक मुअज़्ज़िज़ शरस के लिए जो सुवूत मैंने माँगा उसकी कोई ज़रूरत तो नहीं है, आपकी बात ही सुवूत होनी चाहिए, लेकिन.....लेकिन आप जानते है कि ये सारे सियासी मामलात.....

पुरुषोत्तम—नहीं, नही आप कोई संकोच न कीजिए । अपने कर्त्तव्य का पालन करना आपका धर्म ही है । मैं.....मैं भी आपको पूर्ण रूप से सन्तुष्ट कर दूँगा । (जिस दरवाजे से अहल्या गई है उसी से जाता है ।)

रहमानवेग—जनाव, अब भी शक की कोई गुञ्जाइश दाक़ी है ?

दिलावरखाँ—वह खाय तो उस लौंडे के साथ पहले मेरे सामने ।

रहमानवेग—पर खाने के बाद ?

दिलावरखाँ—हाँ, खाने के बाद तो शक की गुञ्जाइश नही रहनी चाहिए ।

[दिलावरखाँ और रहमानवेग उत्कण्ठा से जिस दरवाजे से पुरुषोत्तम गया है उस दरवाजे की ओर देखते हैं । पुरुषोत्तम का एक

हाथ में परनी हुई थाली और दूसरे हाथ में जल का कलन लिए हुए प्रवेग । थाली में भात, दाल, चाक उत्थादि परोसे हुए हैं । पुरुषोत्तम की गरी उन्मत्ता नष्ट हो, उगका मुख प्रगल्भता से चमक रहा है । उसके पीछे-पीछे नभाजी आता है । पुरुषोत्तम बिना विधायक की भूमि पर थाली रखता है, उसी के निकट जल का कलन । थाली के दोनों ओर पुरुषोत्तम और नभाजी बैठ जाते हैं । पुरुषोत्तम भोजन का थोड़ा-थोड़ा घन निकाल जमीन पर रख, थाली के चारों ओर जल छिड़कना है ।]

पुरुषोत्तम—(जल छिड़कते हुए) 'सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि' (अब आगमन करते हुए) 'अमृतोपस्तरणमसि'

[अब पुरुषोत्तम और नभाजी दोनों उसी थाली में से खाना आरम्भ करते हैं ।]

पुरुषोत्तम—(गाते-गाते) कहिए, मैं साहब अब.....अब भी आप को विश्वास हुआ या नहीं कि विनायक मेरा भानजा है ?

[दिगावरखा का मुख धर्म से भुक्त जाता है ।

रहमानवेग कभी दिगावरखा की तरफ देखता है

और कभी पुरुषोत्तम की ओर ।]

यवनिका

समाप्त

श्री उपेन्द्रनाथ “अश्क” —

जोंक

[एक प्रहसन]

नाटक के पात्र

भोलानाथ

प्रोफेसर आनन्द

बनवारीलाल

कमला

एक पंजाबी, एक हिन्दुस्तानी, एक मारवाड़ी

तथा अन्य लोग

पहला दृश्य

स्थान—भोलानाथ के निवास-स्थान का एक कमरा ।

(कमरा बहुत बड़ा नहीं और न बहुत खुला है । कमरे में दो चारपाइयाँ भी बिछी हैं और दो कुर्सियाँ तथा एक छोटी-सी मेज भी रखी है । इसलिए इसे आप शयन-गृह भी कह सकते हैं और ड्राइंग रूम भी ।

शेष सामान वही है जो साधारण क्लर्क या पत्रकार या ऐसी ही स्थिति के किसी व्यक्ति के यहाँ हो सकता है ।

पर्दा उठने पर हम प्रोफेसर आनन्द को मेज के पास रखी कुर्सी पर बैठे एक समाचार-पत्र के पन्ने उलटते देखते हैं ।

प्रो. आनन्द शकल-सूरत में प्रोफेसर मालूम होते हों, सो बात नहीं, शिक्षा जब से बढ़ी और हिन्दुस्तानियों के भोजन की मात्रा जब से

पट्टी है, तब से कालेजो में ऐसे छात्र आने लगे हैं, जिनको उनकी मानाएँ धानानी से ज्यादा टिब्ट टैवर अपने पास जनाने डिव्वे में बैठा गकती हैं । प्रोफेसर आनन्द कदाचित् छात्रावरथा में ऐसी ही तिमन के छात्र थे । अभी-यभी एम. ए. करके वे पढाने लगे हैं, उनलिये उनकी प्रपस्या में कुछ विनोद गन्तर नहीं आया । उन्हें कोई भी मॉट्रिक का छात्र समझ सकता है और उन समय तो वे प्रोफेसर की बेन-भूषा में भी नहीं है । एक सहदन्द और कमीज पहने शायद हजामत बनाकर बैठे हैं, बयोकि नायुन की सफेदी उनके चेहरे पर लगी दिगार्ई देती है और मेज पर पड़ा हजामत का खुला सामान भी इसी धान की गदाही देता है ।

पर्दा उठने के कुछ देर बाद भोलानाथ दाई और के कमरे से प्रवेश करता है जिधर कदाचित् रंगोर्धर है ।

‘धवल-भूरज से भोलानाथ प्रोफेसर साहब से कुछ मोटा-ताजा है, पर चेहरे पर जो दुर्दिमत्ता प्रोफेसर साहब के टपकती है, उसका वही मयंगन अभाय है—सीधा-नावा सनकी-गा आदमी है । कथे झाडने की आदत है । ऐसे आदमियों को लॉग कभी-कभी जनमुरीद अथवा पत्नी-व्रत भी कह दिया करते हैं । आदृति से उसके धवराहट टपक रही है ।

[आनन्द पूर्ववत् समानार-पन में निमग्न है]

भोलानाथ—(परेजानी के स्वर में) वह फिर आ गया आनन्द !

तुम मेरी सहायता करो परमात्मा के लिए !

आनन्द—(नगाधार-पन रखकर) कॉम आ गया !

(भोलानाथ परेजान-गा कारपाई में धँस जाता है ।)

भोलानाथ—वह एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता ।

आनन्द—कुछ पता भी चले, कॉम है वह ?

भोलानाथ—अरे कौन क्या ! राहों का आदमी है ।

आनन्द—राहों का—तो यों कहो कि तुम्हारे वतनी हैं ।

भोलानाथ—अब वतनी को तो हजारों लोग मेरे वतनी हैं और कमरे (कधे भाड़कर) मेरे पास केवल यही दो है ।

आनन्द—(आश्चर्य से) तो क्या इनसे जान-पहचान नहीं ?
(उठकर कमरे में घूमता है ।)

भोलानाथ—वस, इस बात का चोर हूँ कि अपने छोटे भाई से इसके कारनामे सुनता रहा हूँ और.....

आनन्द—(रुककर) पर तुमने कहा कि फिर आ गया, तो इसका मतलब यह है कि ये साहब पहले भी तुम्हें अतिथि-सत्कार का सौभाग्य प्रदान कर चुके हैं ।

भोलानाथ—(हँसकर) क्या बताऊँ, तनिक बैठो तो विस्तार से कुछ कहूँ !

(आनन्द चारपाई पर बैठना चाहते हैं ।)

भोलानाथ—यहाँ क्या बैठते हो, वह कुर्सी ले लो ।

(कुर्सी घसीटता है)

आनन्द—मैं यही अच्छा हूँ, तुम कहो ?

भोलानाथ—(फिर तनिक-सा हँसकर) बात यह है कि वह मेरा छोटा भाई है न परसराम, जैसा वह आवारा है, वैसे ही उसके दोस्त है । उसका एक मित्र है सोम या मोम या क्या जाने क्या ? वह जब भी आता था, अपने इसी भाई की बड़ी प्रशंसा करता था ।

आनन्द—देश-भक्त है ?

भोलानाथ—खाक !

आनन्द—कवि ?

❀वतनी=एक ही गाँव या नगर के रहने वाले ।

भोलानाथ—इसकी सात पुस्तों में किसी ने कविता का नाम नहीं सुना !

आनन्द—तो वक्ता, डाक्टर, हकीम, वैद्य.....?

भोलानाथ—(चिढ़ कर) तुम सुनते तो हो नहीं और ले उड़ते हो, वे थे न प्रसिद्ध अभिनेता.....मास्टर रहमत ! यह उनके साथ रह चुका है ।

आनन्द—(ठहाका लगा कर) तो ये एक्टर है ?

भोलानाथ—(कधे भाड़कर) अब यह तो मुझे मालूम नहीं कि इसने मास्टर रहमत के प्रसिद्ध नाटक “खून का बदला खून” और “दर्द-जिगर” में कोई अभिनय किया है या नहीं, पर सुना था कि यह उनका दायाँ हाथ है ।

आनन्द—इस बात से तुम्हें क्या दिलचस्पी थी ?

भोलानाथ—(खिन्न हँसी के साथ) अरे बचपन था और क्या ? जब हम मैट्रिक में पढ़ते थे तो उनके नाटक पढ़ने का बहुत शौक था और यद्यपि उन्हें देखने का अवसर प्राप्त न हुआ था..... ।

आनन्द—“खून का बदला खून” और “दर्द-जिगर” !

(व्यंग्य से हँसते हैं ।)

भोलानाथ—अरे भाई, उन दिनों हमारे लिए तो वे कालिदास और शेक्सपियर से कम न थे । उनके नाटक पढ़कर और मुहल्ले के एक रसीली आवाज वाले लड़के से उनके गाने सुन कर हम उनकी कला का रसास्वादन कर लिया करते थे ।

आनन्द—(हँसकर) और उनके अज्ञात प्रशंसकों में थे !

भोलानाथ—तुम तो जानते हो कि प्रसिद्ध लेखकों, नेताओं और अभिनेताओं को लोग साधारण आदमियों से कुछ

ऊँचा ही समझते हैं, और उनसे तो दूर रहा, उनके साथ रहने वालों तक से बात करके फूले नहीं समाते । फिर यह तो मास्टर रहमत का दायँ हाथ था.....

आनन्द—(“अब समाप्त भी करो यह भूमिका” के स्वर में) तो इनसे तुम्हारी भेंट हुई ?

(फिर उठकर घूमने लगते हैं ।)

भोलानाथ—भेंट ! तुम इसे भेंट कह सकते हो । हमारे नगर के हैं न डाक्टर किशोर.....

आनन्द—(रुक कर) नगर नहीं, कस्बा कहो, राहों कस्बा है ।

भोलानाथ—(चिढ़ कर) अरे, हाँ हाँ, तो मैंने इन्हें डाक्टर किशोरीलाल की दुकान पर बैठे देखा, इनकी बातें दिलचस्पी से सुनी और शायद एक दो बातों का उत्तर भी दिया था, बस.....

आनन्द—फिर तुम इन्हें घर ले आये ?

भोलानाथ—(और भी चिढ़ कर) अरे कहाँ, तुम बात भी करने दोगे । इस बात को तो दस वर्ष बीत गये, इसके बाद तो यह गत-वर्ष मिला और तुम भली-भाँति जानते हो कि गत-वर्ष मैं किस मुसीबत से दिन काट रहा था । चंगड़ मुहल्ले का वह पीपल-बेहड़ा और उसमें वह लाला ज्वालादास का नारकीय मकान और उसकी अन्धेरी कोठड़ियाँ जिनमें न कोई रोशनदान था और न खिड़की और गर्मियों में बाहर गली में सोना पड़ता था ।

आनन्द—(ऊब कर) पर बात तो तुम इनसे मिलने की कर रहे थे ?

भोलानाथ—हाँ, उन्ही दिनों जब मैं दिन-भर नौकरी की खोज में घूमता था, यह एक दिन ‘पीपल-बेहड़ा’ के पास ही

चंगड़-मुहल्ले में मिल गया और दूर ही से 'नमस्कार' किया । मैं जल्दी में तो था, पर क्षण भर के लिए रुक गया ।
 आनन्द—तो कहने का मतलब यह.....

भोलानाथ—(अपनी बात जारी रखते हुए) इसने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और कहा कि डाक्टर किशोरीलाल आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं । आप मुझे पहचान तो गये हैं—? मैंने कहा—हाँ हाँ मास्टर रहमत..... कहने लगे—बीमार है बेचारा दर्दे-गुर्दा से !

आनन्द—दर्दे-जिगर से नहीं ?

(हँसते हैं)

भोलानाथ—(व्यग्य की ओर ध्यान न देकर) मैंने खेद प्रगट किया और पूछा कि सुनाइए कैसे आये ? कहने लगा मुझे भी दर्दे-गुर्दा की शिकायत है ।

आनन्द—(ठहाका लगा कर) वह किसी ने कहा है न कि एक ही जाति के पक्षी एक ही साथ उड़ते हैं !

भोलानाथ—मैंने और भी शोक प्रकट किया । कहने लगा—कर्नल माथुर को दिखाने आया हूँ । कल चला जाऊँगा । मैंने कहा—तो आइए कुछ पानी-वानी पीजिए । कहने लगा—लाला बिहारीलाल प्रतीक्षा तो करते होंगे, पर चलिए अपने वतनी का अनुरोध कैसे टाला जा सकता है ।

आनन्द—(ठहाका लगाते हैं)—बिहारीलाल कौन थे ?

भोलानाथ—(जल कर) जाने कोई थे भी या नहीं । मेरे तो पाँव तले से धरती निकल गई ! बड़े ही ज री काम से जा रहा था और मैंने तो योंही शिष्टाचार-वश पानी के लिए पूछा था । खैर ले आया और पेशबन्दी के तौर पर मैंने पत्नी से केवल ठंडे पानी का गिलास लाने के लिए कहा ।

पानी लेकर ये महाशय वही गली में बिछी हुई चारपाई पर लेट गये। मुझे जल्दी जाना था। मैंने सकुचाते-सकुचाते कहा—मुझे... अ... अ ज़रा जल्दी है, आप किधर जा रहे हैं ? लेकिन इन्होंने बात काट कर और टांगे फैलाते हुए कहा—हाँ हाँ आप गौक से हो आइए, मैं थक गया हूँ, यहाँ जरा आराम करूँगा।.....

आनन्द—(हँस कर) खूब !

भोलानाथ—(कबे भाड़ कर) तुम होते, तो मेरी सूरत देखते । नई-नई गाड़ी हुई थी और ये हमारे बतनी.....

(आनन्द फिर ठहाका लगाते हैं)

भोलानाथ—मरता क्या न करता ! मुझे तो जल्दी थी, हारकर चला गया। वापस आया तो ये मजे से विस्तरा बिछवा कर सो रहे थे और पत्नी बेचारी अन्दर गर्मी में तप रही थी। पहुँचा तो कहने लगी—आपका इतना घनिष्ठ मित्र तो मैंने देखा नहीं। आपके जाने के बाद कहने लगा—तुम तो शायद 'नवाँ गहर' की हो। मैं चुप रही तो बोला—फिर तो हमारी बहन हुई !

आनन्द—बहन !

भोलानाथ—अब कमला मुझ से पूछने लगी कि ये हैं कौन ? मैं क्या बताता ? इतना कहकर चुप हो रहा कि हमारे बतनी हैं। चारपाइयाँ हमारे पास केवल दो थी। आखिर यह गरीब सख्त गर्मी में भी अन्दर फर्श पर सोई। ख्याल था कि दूसरे दिन चले जायँगे, लेकिन पूरे सात दिन रहे और जब गये तो मैंने कस्म खाकर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आयँगे। लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला.....

(कमला प्रवेश करती है)

कमला—मैं पूछती हूँ, आप चुपचाप इधर आकर बैठ गये हैं और वे मुझे इस तरह आदेश दे रहे हैं जैसे मैं उनकी कोई मोल ली हुई बाँदी हूँ—‘कमला पानी ला दो,’ ‘कमला हाथ धुला दो,’ ‘कमला यह कर दो, कमला वह कर दो,’ ये हैं कौन ? आप तो कहते थे, मैं इन्हें जानता तक नहीं, फिर ये क्यों इधर मुँह उठाये चले आते हैं ? इन्हें कोई और ठौर-ठिकाना नहीं ?

भोलानाथ—(घबरा कर और कधे झाड़ कर) अब बताओ.....

(उठकर खड़ा हो जाता है।)

आनन्द—तुम ठहरो भाभी, मुझे सोचने दो।

(उठ कर माथे पर हाथ रखे सोचते हुए घूमते हैं।)

कमला—आप सोच कर करोगे क्या ? ये कोई इनके पुराने यार होंगे, मुझे इस बात से तो चिढ़ है कि आखिर ये मुझ से छिपाते क्यों हैं ? क्या मैं इनके मित्रों को घर से निकाल देती हूँ ?

(चारपाई के किनारे बैठ जाती है।)

आनन्द—देखो भाभी...

कमला—मैं कुछ नहीं देखती, आप देखिए ! आप से हमारा कोई पर्दा नहीं। हमारे पास कमरे दो हैं और फालतू बिस्तरा एक भी नहीं, फिर आप भी यहाँ हैं। इनके ये बतनी बिस्तर बिछवा कर सो रहेंगे और मैं पड़ी ठिठुरा कलंगी बाहर बरामदे में।

आनन्द—देखो भाभी, ये इनके मित्र नहीं, यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।

कमला—तो फिर ये उन्हें साफ जवाब क्यों नहीं देते ?

आनन्द—यदि इनसे यह हो सकता तब न ?

भोलानाथ—(जो इस बीच में इधर-उधर घूमता रहा है, रुक कर और कंधे झाड़ कर) हाँ अब वतनी आदमी है……

कमला—वतनी है तो……

आनन्द—देखो भगड़ने से कुछ न बनेगा ! इस आदमी को धता बताना चाहिए ।

कमला—यही तो मैं कहती हूँ !

आनन्द—यह इनसे हो चुका । इन अतिथि महोदय की खबर तो किसी दूसरी तरह ली जायगी ।

[कुछ क्षण मौन—जिसमें आनन्द सोचते हैं और भोलानाथ अँगड़ाई लेता है, फिर—]

आनन्द—(धीमे स्वर में) मैं पूछता हूँ वह कार क्या रहा है ?

कमला—शायद बाहर गया है ।

आनन्द—(जिसे तरकीब सूझ गई है घुटकी बजा कर) मैं कहता हूँ भाभी, तुम लिहाफ़ ले लो और चुपचाप लेट जाओ और यदि कराह सको तो कुछ-कुछ समय के बाद कराहती भी जाओ । (भोलानाथ से) देखो, भाई तुम कह देना कि मुझे थूख नहीं । मैं बहाना कर दूंगा कि जी भारी होने से मैं उपवास से हूँ और बस ……

(सीढ़ियों से पाँवों की चाप आती है ।)

आनन्द—(मुड कर) मैं कहता हूँ जल्दी करो । (एक-एक शब्द पर जोर देकर) ज . ल . दी करो, इन्ही कपड़ों समेत लेट जाओ ।

(द्वार में दो लीकियाँ लिये बनवारीलाल प्रवेश करता है ।)

भोलानाथ—आइए, आइए ! किधर चले गये थे आप ? ये है मेरे मित्र श्री आनन्द, जालन्धर में प्रोफ़ेसर हैं, यहाँ

प्रिसिपल गिरधारीलाल से मिलने आये हैं और
(बनवारीलाल की ओर सकेत करके) ये हैं मि. बनवारीलाल
मेरे वतनी ! किसी जमाने में प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर
रहमत के साथ.....

आनन्द और बनवारीलाल—(एक साथ) आप से मिलकर बड़ी
प्रसन्नता हुई ।

(दोनों जरा हँसते हैं ।)

भोलानाथ—यह आप क्या उठा लाए इतनी लौकियाँ ?.....

(कमला धीमे से कराहती है ।)

बनवारीलाल—यों ही नीचे चला गया था । बाहर बिक रह थी,
(हँस कर) मैंने कहा चलो.....

(कमला तनिक और जोर से कराहती है ।)

बनवारीलाल—(मुडकर और चौंक कर) क्या बात है ? क्या
बात है ? (स्वर मे चिन्ता)

भोलानाथ—इन्हें अचानक दौरा पड गया, बड़ी मुश्किल से होठ
आया । प्रायः पड जाया करता है दौरा.....
हिस्टीरिया.....

बनवारीलाल—तो आप इलाज-उपचार.....?

भोलानाथ—इलाज-उपचार बहुत हुआ । कर्नल... (फिर बात
के रख को बदल कर)—ये तो बीमार पड गयी और (जरा
हँस कर) लौकियाँ आप इतनी उठा लाये (फिर आनन्द से)
क्यों भाई आनन्द, तुम कहते थे.....

आनन्द—मैं तो आज उपवास से हूँ, तबीयत भारी है ।

भोलानाथ—मैं भी तो खाने के मूड * में नहीं ।

*मूड.....Mood

बनवारीलाल—(अन्दर रसोई-घर की ओर पग उठाते हुए)
लौकी की खीर.....हिस्टीरिया में बड़ा लाभ करती हैं।
और मैं पकाता भी अच्छी हूँ। (जरा हँसकर) साथ ही
अपने लिए भी दो रोटियाँ सेक लूंगा और तरकारी
भी.....लौकी ही की बन जाएगी। मेरा तो विचार है,
आप भी खायँ, मजा न आ जाय तो नाम नहीं। अन्दर
अँगीठी तो होगी ही, कोयलों की आँच पर लौकी की
खीर बनती भी ऐसी है कि क्या कहूँ !

(रसोईघर में चला जाता है)

आनन्द—(धीरे से) यह ऐसे न जायगा।

बनवारीलाल—(रसोईघर से) क्यों भाई मसाला कहाँ है ?

कमला—(लेटे लेटे) कह दो समाप्त हो गया है।

भोलानाथ—(जरा ऊँचे स्वर में) मसाला तो मित्र, समाप्त हो गया।

बनवारीलाल—(अन्दर से) और घी कहाँ है ?

कमला—कह दो समाप्त हो गया।

भोलानाथ—(कंधे झाड़ कर) अब यह कैसे कह दूँ ?

आनन्द—(भोलानाथ से ऊँचे स्वर में) अरे घी नहीं लाये तुम,
सवेरे ही भाभी ने कहा था कि घी खत्म हो गया है, कैसे
गृहस्थी हो तुम ?

(धीरे से, शरारत की हँसी हँसता है।)

बनवारीलाल—अच्छा एक आने का घी कम से कम आज के
लिए तो लेता आऊँ। मसाला भी नहीं, और चीनी
भी.....मेरा ख्याल में.....नहीं ! और दूध भी.....
नहीं ! मैं जाकर चन्द मिनटों में सब लाया। ये जब तक
कुछ खायँगी नहीं, कमजोरी दूर न होगी !

(चला जाता है।)

आनन्द—(आश्चर्य से) यह विचित्र अतिथि है जो अतिथि के साथ अतिथि-सेवक का कर्तव्य भी पूरा कर रहा है और अपनी जेब से.....

भोलानाथ—मैं कहता हूँ, यह जोक है, कोई और तरकीब भिड़ाओ। पाँच आने खर्च कर देगा तो क्या हुआ ! गत-वर्ष जाते-जाते मुझ से पाँच रुपये ले गया था।

कमला—(चारपाई से उछल कर) दिए आपने पाँच रुपये !

भोलानाथ—(कधे भाड़ कर) अब मैं.....!

कमला—और मैं पाँच पैसे माँगती हूँ, तो नहीं मिलते।

भोलानाथ—अब वतनी.....!

कमला—(क्रोध से) तो भुगतिए, पाँच क्या मेरी ओर से पाँच सौ दे दीजिए। बस मुझे मैके छोड़ आइए !

आनन्द—(उल्लास से उछलकर) ओह ! (ताली बजा कर) स्प्लैण्डिड * मैके.....ठीक है। जल्दी करो भाभी को लेकर किसी पड़ोसी के यहाँ चले जाओ और वह आया तो मैं कह दूँगा भाभी की तबीयत बहुत खराब हो गई थी, आखिर भाई साहब उन्हें मैके छोड़ने चले गए—क्यों ?

(प्रशंसा पाने की इच्छा से दोनों की ओर देखते हैं)

भोलानाथ—हाँ यह तरकीब खूब है (पत्नी से) तुम जरा अन्दर पड़ोसिन से बातें करना। मैं कुछ देर के लिए उनके पति के पास बैठक में बैठ जाऊँगा (आनन्द से) किन्तु मित्र, कहता हूँ यदि वह न गया !

आनन्द—उसके देवता भी जायँगे। तुम्हारे जाते ही ताला लगा कर मैं भी खिसक जाऊँगा—बस !

कमला—वाह ! ताला लगा कर आप चले जायँगे तो जो बर्तन

*Splendid खूब।

वह ले गया है—वे ! नहीं, आपने यों कहना कि वे चले गये है, मैं भी जा रहा हूँ । बस निकाल कर घास-मण्डी तक छोड़ आना ।

भोलानाथ—घास-मण्डी तक ! यह ठीक है !

(ठहाका मारता है ।)

आनन्द—हाँ हाँ पर तुम जल्दी करो, वह आ जायगा ।

भोलानाथ—हाँ हाँ, जल्दी करो, (कमला को दूक खोलने के लिए जाते देखकर) मैं कहता हूँ नयी साड़ी पहनने की जरूरत नहीं, तुम सचमुच मैंके नहीं जा रही हो ! और वे हमारे पड़ोसी तुम्हें इन कपड़ों में कई बार देख चुके हैं ।

कमला—(दूक को जोर से बन्द कर उठते हुए) मैं पूछती हूँ.....

आनन्द—हाँ-हाँ वहीं पूछना, चलो-चलो.....

(दोनों को ढकेलते हुए ले जाता है ।)

पर्दा

दूसरा दृश्य

उसी मकान का बरामदा

[बरामदा, एक ओर से, जिधर दर्शक बैठे हैं, खुला है । इस ओर बड़ी-बड़ी चिके लगी हुई है जो खोल दी जाती है तो यह बरामदा एक लम्बा-सा कनरा बन जाता है । इस समय क्योंकि चिकें बन्द, छत के साथ लटक रही है, इसलिए बरामदे में क्या हो रहा है, इसे दर्शक भली भाँति देख सकते हैं ।

दो हल्की-हल्की बेत की कुर्सियाँ बरामदे में बाईं ओर को रखी हैं । उन पर दो वर्ष से रोगन नहीं किया गया । कुर्सियों के आगे एक बेत की ही तिपाई रखी है । जिस पर मैला-सा कुर्सियों के रंग का नीला कपड़ा बिछा है ।

बाईं ओर दरवाजा है, जो सीढ़ियों पर खुलता है । सामने

दो दरवाजे हैं जो क्रमशः पहले दृश्य के दो कमरों को जाते हैं। रसोई-घर शायद इन कमरों से परे अन्दर की ओर है। दरवाजे पुरानी तर्ज के हैं और इनके ऊपर रोशनदान हैं, जिनके शीशे शायद अभी तक नहीं लगे या टूट गये हैं, हाँ उनकी जगह गत्ते के टुकड़े लगे हुए हैं। दो खाली चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं। एक कुर्सी पर मि० आनन्द बैठे हैं, दूसरी कुर्सी पर उनके पैर हैं। उनके दाईं ओर तिपाई पर जूठे खाली बर्तन रखे हैं।

उस समय जब पर्दा उठता है, वे सिग्रेट सुतागाने की फिफ्ट में है।]
आनन्द—(उस दियासलाई को धरती पर पटक कर जो बुझ गई है।) हुँ !

(भोलानाथ सीढियों के दरवाजे से भाँकता है।)

भोलानाथ—मैं कहता हूँ, हमें वहाँ बैठे-बैठे एक घण्टा हो चुका है और तुम ने अभी तक आवाज़ नहीं दी !

(उछल कर आनन्द उसके पास जाते हैं।)

आनन्द—मैं कहता हूँ, धीरे बोलो, वह रसोई-घर में बैठा खाना खा रहा है !

(दोनों बरामदे के बीच आ जाते हैं।)

भोलानाथ—(बर्तनों की ओर देखकर) और यह तुम ?

आनन्द—मैंने भी उपवास खोल लिया। कम्बख्त, लौकी की खीर तो ऐसी स्वादिष्ट बनाता है कि क्या कहूँ।

भोलानाथ—परन्तु

आनन्द—परन्तु क्या ? जो तय हुआ था, उसके अनुसार ही मैंने सब-कुछ किया। पर वह एक ही दुष्ट है।

भोलानाथ—(सोचते हुए) तो गया नहीं ?

आनन्द—वह इस तरह आसानी से न जायगा, ऐसे को साफ जवाब

भोलानाथ—परन्तु शिष्टता भी कोई चीज है.....तुम नहीं समझते आनन्द !

[सिर खुजाते हुए कमरे में घूमने लगता है]

आनन्द—साफ़ जवाब नहीं दे सकते तो भुगतो !

भोलानाथ—तुमने उससे कहा नहीं कि भाभी की तबीयत.....

आनन्द—कहा क्यों नहीं। जब वह सब चीज़ें वापस लेकर आया तो मैंने बुरा-सा मुँह बनाकर कहा—भाभी की तबीयत तो बड़ी खराब हो गयी ! उन्होंने कहा मैं तो मैके जाऊँगी, और वे ठहरे बीवी के गुलाम, उसी क्षण लेकर चले गये ।

भोलानाथ—(अत्यन्त क्रोध से) बीवी के गुलाम !

आनन्द—(हँस कर और भी धीरे से भेद-भरे स्वर में) अरे वह तो मैंने केवल बात बनाने के लिए कहा था ।

भोलानाथ—(दिल ही दिल में क्रोध के घूँट पीकर) हूँ !

आनन्द—यह कह कर मैं ताला उठाने के लिए बढ़ा और वह रसोई-घर में चला गया । मैंने ताले को हाथ में उछालते हुए कहा—मैं तो जा रहा हूँ । कहने लगा खाना तो खाते जाइएगा, लौकी की खीर का मजा..... ।

भोलानाथ—और तुम्हारे मुँह में पानी भर आया ?

आनन्द—नहीं, मैंने कहा—मैं तो जाऊँगा ।

भोलानाथ—फिर ?

आनन्द—उसने वेफ़िक्री से अँगूठी में कोयले डाल कर उन्हें सुलगाते हुए कहा—अच्छा तो हो आइए, पर आ जाइएगा जल्दी, ठण्डी खीर का क्या मजा आयगा !

भोलानाथ—(गुरसे से दाँत पीस कर) हूँ !

आनन्द—तब मैंने सोचा कि यह इस तरह न जायगा । कोई

दूसरी तरकीब सोचनी पड़ेगी । चाहिए तो यह था कि मैं ताला लगा कर बाहर बरामदे में मिलता, पर भाभी की दो तश्तरियों ने.....

भोलानाथ—(आकुलता से) फिर-फिर ?

आनन्द—फिर क्या, मैंने सोचा कि इन्हें यहाँ छोड़ कर घर से नहीं जाना चाहिए, कहीं कोई चीज़ ही न उठाकर चम्पत हो जाएँ । इसलिए बात बदल कर मैंने कहा—वैसे जाने की मुझे कोई जल्दी नहीं । यह आपने ठीक कहा कि खीर का मज़ा ताजी पकी ही में है । आइए देखें तो सही आप खीर क़ैसी बनाते हैं । बस, उन्होंने खीर तैयार की, लौकी की सब्जी बनाई और हल्की-हल्की रोटियाँ सकी—कम्बख़्त गजब की रसोई बनाता है ।

भोलानाथ—(कवे भाड़कर निराशातिरेक से) अब.....

(सिर नीचे किये घूमता है ।)

आनन्द—अब क्या, तुम भी निश्चिन्त होकर चढ़ा जाओ ।

भूखे पेट कुछ न सूझेगा, तर माल अन्दर जाय तो.....

[अन्दर के कमरे से बनवारीलाल हमाल से

हाथ पोछता हुआ प्रवेश करता है ।]

बनवारीलाल—(चाँक कर) अरे ! गये नहीं आप ?

भोलानाथ—(जैसे कब्र से) गाड़ी मिस कर गये ।

बनवारीलाल—और कमला जी..... ?

भोलानाथ—(चिढ़ कर) उन्हें फिर दौरा पड़ गया ।

बनवारीलाल—(गम्भीरता से) ओहो, तो कहाँ.....

भोलानाथ—वैटिंग-रूम में बिठा आया हूँ । दूसरी गाड़ी देर से जाती थी इसलिए.....

बनवारीलाल—(खेद के साथ अन्दर को मुड़ता हुआ) एक डिब्बे में

खीर डालकर बन्द किये देता हूँ। साथ ले जाइए, विश्वास कीजिए, लौकी की खीर हिस्टीरिया के दौरे में बड़ा लाभ करती है और फिर वे प्रातः से भूखी भी तो होंगी।

भोलानाथ—(क्रोध को छिपाते हुए) नहीं, कष्ट न कीजिए, मैं दवाई के साथ थोड़ा-सा दूध पिला आया हूँ।

बनवारीलाल—आप ही लीजिए, (आनन्द की ओर देख कर) क्यों प्रोफेसर साहब, इन्होंने भी तो सुवह का..... ?

भोलानाथ—(अन्यमनस्कता से) मैं तो खाने के मूड में नहीं !

बनवारीलाल—(खिन्न हुए बिना) क्यों न हो (तनिक हँसकर) एक बार किसी ने एक साधु से पूछा था—खाने का ठीक समय कौन सा है ? उसने उत्तर दिया—सम्पन्न का जब मन हो और विपन्न को जब मिले। आप ठहरे धनी-मनी और हम (हिं हिं करते हुए) निर्धन ! अच्छा, पान तो लेंगे न ?

भोलानाथ—(सूखेपन से) मैं नहीं खाता।

बनवारीलाल—(मुस्करा कर) और आप प्रोफेसर साहब ?

आनन्द—(जो बहुत खा गया है) मुझे कोई आपत्ति नहीं।

बनवारीलाल—अच्छा मैं नीचे पनवाड़ी से पान ले आऊँ...?

(वेपरवाही से हँसता हुआ चला जाता है)

भोलानाथ—(कन्धे झाड़ कर) मैं कहता हूँ अब...?

आनन्द—(चुप !)

भोलानाथ—(आकुलता से) आखिर अब क्या किया जाय ?

वह कब तक पड़ोसी के यहाँ बैठी रहेगी ? तुम तो मजे से खाना खाकर कुर्सी पर डट गए हो और हमारी आँतें.....

आनन्द—भई, खाना खाने के बाद मेरी तो सोचने-समझने की शक्तियाँ जवाब दे जाती है, मैं तो सोऊँगा ।

(उठते हैं ।)

भोलानाथ—पर तुम कहते थे, इसकी खबर लूँगा.....

आनन्द—(फिर बैठ कर) वह तो जरूर लूँगा, पर दो-चार क्षण आँख लग जाय, तो कुछ सूझे ।

[तन्त्रिन् आँखों से भोलानाथ की ओर देखते और हँसते हैं ।
भोलानाथ निराश-सा हाथ कमर के पीछे रखे सोचता हुआ घूमता है ।]

भोलानाथ—उठो, हो चुका तुम से । बाहर ताला लगाये देते हैं । स्वयं रो-पीट कर चला जायगा हम दोनों किसी होटल में खाना खा लेंगे ।

आनन्द—(कुर्सी पर पीछे की ओर लेट कर जम्हाई लेते हुए) तो फिर मुझे क्यों घसीटते हो ? मुझे नीद लगी है ।

(फिर कुर्सी से उठते हैं)

भोलानाथ—(जो बहुत तेजी से कमरे में घूमता रहा है, अचानक रुक कर) आखिर क्या मतलब है तुम्हारा ?

आनन्द—(फिर कुर्सी में धँस जाता है ।) अरे भाई, तुम बाहर ताला लगा कर जाना चाहते हो, लगा जाओ । इस दूसरे कमरे को अन्दर से बन्द कर जाओ । और इस कमरे में बाहर से ताला लगा दो । मुझ तीन बजे प्रिंसिपल गिरधारीलाल जी से मिलने जाना है । तब मैं उस कमरे से निकल कर बाहर से ताला लगाता जाऊँगा । अब जल्दी करो नहीं तो वह आ जायगा !

(उठ कर बाई ओर के कमरे में चले जाते हैं ।)

आनन्द—(अन्दर से) लो, मैं तो लेट गया । अब पान स्वप्न ही में खाऊँगा ।

[भोलानाथ कुछ क्षण तक घूमता है फिर तेजी से वह
अन्दर चला जाता है। उसकी क्रोध से भरी
चिड़चिड़ी आवाज़ आती है।]

भोलानाथ—ताला कहाँ है ? मैं कहता हूँ—ताला कहाँ है ?...
कमबख्त ताला.....मिल गया ! मिल गया !!

[ताला हाथ में लिये आता है और अंगुली में कुजी घुमाता है।]

आनन्द—(अन्दर से) अरे देखो यह उसका बैग बाहर रखते
जाओ नहीं तो इसी बहाने आ जायगा।

[भोलानाथ अन्दर जाता है और कपड़े का पुराना भरा-सा
हैड-बैग लेकर आता है। हैड-बैग को बाहर दीवार के साथ टिका
देता है और दरवाज़ा बन्द करके ताला लगाने लगता है कि अन्दर से
प्रोफ़ेसर साहब की आवाज़ आती है—]

सुनो-सुनो।

भोलानाथ—(फिर जल्दी से किवाड़ खोल कर) कहो !

आनन्द—अरे वर्तनों को तो अन्दर रखते जाओ !

(भोलानाथ शीघ्रता से वर्तन उठा कर देता है।)

आनन्द—(वर्तन लेकर) और यह तिपाई और कुर्सी भी दे दो।

[भोलानाथ जल्दी-जल्दी तिपाई और कुर्सियाँ देता है, फिर जल्दी
जल्दी ताला लगाता है। जल्दी में चारपाई से ठोकर खाता है और
बड़बड़ाता हुआ चला जाता है।]

कहीं बाहर घड़ियाल 'टन' 'टन' करते दो बजाता है।

(बनवारीलाल मुँह में पान दबाये और कागज़ में
लिपटी पान की एक गिलौरी एक हाथ में
थामे दाखिल होता है।)

बनवारीलाल—(दरवाज़े लगे हुए देखकर आवाज़ देता है) भोलानाथ,
भोलानाथ।

[फिर कमरे में ताला लगा और बाहर अपना बैग देख कर चौंकता है, मुस्कराता है। फिर अपने-आप—]
खैर अभी तो मैं सोऊँगा !

[चारपाई बिछाता है, जो दूसरे कमरे के दरवाजे को बिलकुल रोक लेती है। उस पर लेटकर सिगरेट सुलगाता है और एक-दो कश लगा कर करवट बदल लेता है।]
(पर्दा गिरता है।)

[कुछ देर बाद पर्दा फिर उठता है और बनवारीलाल गहरी नीद में सोया दिखाई देता है, उसके खर्राटों की आवाज साफ सुनाई देती है।]

(पर्दा)

दृश्य तीसरा

[पर्दा धीरे-धीरे उठता है। दृश्य वही। बनवारीलाल करवट बदलता है। अन्दर घड़ी में तीन बजते हैं। वह धूप की ओर देखता है।]
बनवारीलाल—(अपने-आप से) ओह, धूप कहाँ चली गई !

[ऊपर रोशनदान का गत्ता हिलता है और किसी का हाथ बाहर निकलता है। वह चुपचाप करवट बदल लेता है।]

[धीरे-धीरे गत्ते को हटा कर प्रो. आनन्द सूट-बूट पहने रोशनदान में से बड़ी कठिनाई से उतरने का प्रयास करते हैं।]

बनवारीलाल—(जैसे किसी की आहट से चौंक कर) कौन है ?) फिर चौंक कर और उठ कर) कौन, कौन रोशनदान से अन्दर दाखिल होने का प्रयास कर रहा है ? (शोर मचाता है)
चोर.....चोर.....दौड़ियो.....भागियो !

आनन्द—मैं हूँ आनन्द !

(आवाज गले में फँसी हुई सी है।)

बनवारीलाल—पूर्ववत् स्वर में धवराहट लाकर) चोर...चोर...
...दौड़ियो...भागियो !!

[चार-पाँच आदमियो के भागते आने का स्वर।

एक मारवाडी, एक हिन्दुस्तानी और दो एक
पजाबी सीढ़ियो से प्रवेश करते हैं।]

मारवाड़ी—(जिसकी साँस अभी तक फूल रही है) काई छे बाबू
शाव, काई छे ? ❀

हिन्दुस्तानी—क्या बात है भाई, क्या बात है ?

पजाबी—(सबको पीछे धकेल कर) की गल्ल ऐ, की गल्ल ऐ, किद्धर
चोरी होई है, किद्धर ? †

बनवारीलाल—(आनन्द की ओर संकेत करके) यह देखिए आजकल
के जैटलमैन बेकार । कोई काम न मिला तो यही
व्यवसाय अपना लिया । दिन दहाड़े डाका डाल रहे
हैं । मेरे मित्र हैं न पण्डित भोलानाथ । मैं उनसे मिलने
के लिए आ रहा था । देखता हूँ तो यह अन्दर घुसे जा
रहे हैं । यह बैग शायद पहले निकाल कर रख चुके थे ।
(व्यग्र से आनन्द की ओर देखकर) उतरिए महाशय ; अब
जरा चन्द दिन बड़े घर की रोटियाँ तोड़िए !

हिन्दुस्तानी—(आगे बढ़कर) यह बैग उठा रहे थे ?

बनवारीलाल—न-न इसे हाथ न लगाइएगा । इसमें सब गहने
भरे होंगे । पुलिस ही आकर खोलेगी ।

आनन्द—(जो बिलकुल धवरा गया है) मैं...मैं...

❀ क्या बात है बाबू साहब, क्या है ?

† क्या बात है, क्या बात है, किधर चोरी हुई है, किधर ?

मारवाड़ी—अबे साला, मै-मै क्या, नीचे तो उतर ! मार-मार भुँस बना देगे ।

हिन्दुस्तानी—(दार्शनिक भाव से) आजकल की बेकारी ने नौजवानों को चोर और डाकू बना दिया है ।

पंजाबी—ओए, उत्तर ओए ! ओथेई की टंग गया ऐं । सूट ताँ देखो जिवे नाहड़ूखाँ दा साला होंदा ऐ ! ❀

[आगे बढ़कर आनन्द को पाँव से पकड़ कर धसीटता है । वह धम से फर्श पर आ गिरता है ।

पंजाबी युवक दो चार चौरस थप्पड़ उसके मुँह पर लगा देता है ।]

आनन्द—(क्रोध और अपमान से जल कर) मैं पंडित भोलानाथ का मित्र प्रो. आनन्द... ..

पंजाबी—चल-चल प्रोफेसर दा बच्चा, जाके थाने वालेयाँ नूं दस्सी कि तू प्रोफेसर है जाँ प्रिंसिपल ! †
(सब ठहाका मारते हैं)

बनवारीलाल—मैं भी उनका मित्र हूँ, लेकिन अनुपस्थिति में मकान नहीं तोड़ता फिरता !

मारवाड़ी—आजकल जमानो ऐसोई छै बाबू जी ! काई करयो जाय । ‡

बनवारीलाल—(गर्ज कर) क्या किया जाय ! मैं अभी पुलिस को

❀ अबे उतर, वहाँ ही क्या टंग गया है, सूट तो देखिए जैसे नाहड़ूखाँ का साला होता हो ।

† चल-चल प्रोफेसर का बच्चा, जाकर थाने वालो को बताना कि तू प्रोफेसर है या प्रिंसिपल !

‡ आजकल का जमाना ऐसा ही है । बाबू जी, क्या किया जाय ?

टेलीफ़ोन करता हूँ। आप इसे पकड़ रखें (जाते हुए) और देखिए बैग को हाथ न लगाइएगा।

(कई और व्यक्ति आते हैं।)

आनेवाले—क्या बात है? क्या हुआ? क्या? आ?

मारवाड़ी—यह चोर चौड़े-दिहाड़े चोरी कर रहो छो शाब!¹

हिन्दुस्तानी—(व्यंग्य से) जैण्टलमैन चोर!

आनन्द—मैं कहता हूँ.....

पंजाबी—(एक और थप्पड़ जमा कर) तू की कहना ऐ, नाले चोर नाले चतुर!²

(भीड़ को चीरता हुआ भोलानाथ आता है)

भोलानाथ—क्या बात है, क्या बात है?

मारवाड़ी—बच गया छो शाब, थाके चोरी कर रह्यो छो।³

हिन्दुस्तानी—समझिए बच गये। आपके मित्र ने इसे ठीक मीके पर चोरी करते हुए पकड़ लिया।

आनन्द—(जिसका साहस भोलानाथ के आने से बढ़ गया है) मैं कहता हूँ....

मारवाड़ी—(लपक कर) तू काई कहे छे।⁴

हिन्दुस्तानी—(अदा से) यह कहता है.....

पंजाबी—एह कहदाँ ए (चवा चवा कर) नाले चोर, नाले चतुर!

एह हैड बैग किये लै चलिया सू.....⁵

(सब हँसते हैं)

१. यह चोर दिन-दिहाड़े चोरी कर रहा था, साहब।

२. तू क्या कहता है, चोर और फिर चतुर।

३. साहब बच गये आप, यह आपके चोरी कर रहा था।

४. तू क्या कहता है?

५. यह कहता है। चोर और फिर चतुर! यह हैड बैग कहाँ ले चला था?

भोलानाथ—(बढ़कर पजाबी की गिरफ्त से आनन्द को छुड़ाता हुआ)
छोड़िए छोड़िए, आप सब जाइए। ये मेरे मित्र है, मैं
इनसे निबट लूंगा।

हिन्दुस्तानी—लेकिन चोरी.....

भोलानाथ—मैं कहता हूँ, इन्होंने कोई चोरी नहीं की। आप
जाइए। मेरी पत्नी को आना है और आप सीढ़ियाँ
रोके हैं।

(सब बड़बड़ाते हुए चले जाते हैं।)

पजाबी—(रुक कर) पर ओह बाबू।^१

भोलानाथ—(चीख कर) वह शैतान गया नहीं ?

(पजाबी जल्दी-जल्दी चला जाता है।)

आनन्द—वह तो पुलिस में रिपोर्ट लिखाने गया है !

भोलानाथ—आखिर हुआ क्या ?

आनन्द—होता क्या ? सब उसकी बदमाशी है।

भोलानाथ—आखिर बात क्या हुई ?

आनन्द—होता क्या ? तुम्हारे जाने के बाद मैं लेट गया। तो
कुछ ही देर बाद वह आया। पहले तुम्हें आवाजें दी
फिर शायद ताला देख कर बड़बड़ाया। चारपाई घसीट
कर बिल्कुल उस दरवाजे के आगे बिछा कर लेट गया।
मैं.....

भोलानाथ—तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था, कहा न था
चलो हमारे साथ।

आनन्द—साढ़े तीन बजे मुझे प्रिंसिपल साहब से मिलना था।
आखिर प्रतीक्षा करके मैं तैयार हुआ। पर जाऊँ किधर

१. पर वह बाबू।

से ? मैं तिपाई पर चढ़ कर रोशनदान तक चढ़ा, फिर उतरने लगा था कि उसे बाहर ही सोते छोड़ कर चल दूँ ।

भोलानाथ—और वह तुम्हारा भी गुरु निकला ! मैंने कहा था न कि अक्वल दर्जे का पाजी है ?

आनन्द—उसने तो शोर मचा दिया, इतने आदमी इकट्ठे कर लिए और उस पंजाबी ने तो कई थप्पड़ मेरे मुँह पर जड़ दिये ।

(बनवारीलाल प्रवेश करता है ।)

बनवारीलाल—(जैसे कुछ जानता ही नहीं) ये विचित्र दोस्त हैं आपके । ये तो सब कुछ उठा कर ही ले चले थे ।

भोलानाथ—आप को शर्म नहीं आती, ये तो अन्दर ही थे ।

बनवारीलाल—पर मुझे क्या पता था, मैंने आवाज दीं, ये बोले तक नहीं ।

भोलानाथ—सो रहे होंगे !

बनवारीलाल—तो जब जागे थे, तब मुझे आवाज देते, रोशनदान से उतरने की क्या आवश्यकता थी.....?

भोलानाथ—अच्छा हटाइए इस मामले को । कमला की तबीयत खराब हो रही है । मैं इसी गाड़ी से उसे गुरदासपुर ले जाऊँगा । चलो आनन्द, तुम मेरे साथ चलो । अब प्रिंसिपल साहब से कल मिल लेना ।

बनवारीलाल—आप गुरदासपुर जा रहे हैं ! आपकी ससुराल तो नवाँशहर है ?

भोलानाथ—वहाँ कमला के बड़े भाई रहते हैं ।

बनवारीलाल—(चौककर) भाई !

भोलानाथ—म्युनिसिपल कमेटी में हैड-क्लर्क हैं ।

बनवारीलाल—म्युनिसिपल कमेटी में (उल्लास से हल्की सी ताली बजा कर) यह आपने अच्छी खबर सुनाई । मैं स्वयं परेशान था । वहाँ म्युनिसिपल कमेटी में मुझे काम है । गुरदासपुर में मेरा कोई परिचित नहीं था । अब आप साथ होंगे तो सब कुछ सुगमता से हो जायगा । ठहरिए, मैं यह बैग उठा लूँ !

(बढ़ कर बैग उठाता है ।)

पर्दा

—

श्री विष्णु प्रभाकर—

संस्कार और भावना

[एक घरेलू आँकी]

नाटक के पात्र

माँ—संक्राति-काल की एक हिंदू नारी ।

अतुल—माँ का छोटा पुत्र ।

उमा—पुत्रवधू, अतुल की पत्नी ।

नौकर और मिसरानी ।

[स्टेज पर एक मध्यवर्गीय परिवार के आँगन का दृश्य । पूर्व की ओर दो कमरे हैं, जिनके द्वार बन्द हैं । पश्चिम भाग का द्वार बाहर जाता है, वह भी बन्द है । उत्तर भाग में रसोई के आगे बरामदा है । दक्षिण में बड़ा बरामदा है, जिस का एक द्वार बैठक में जाता है, दूसरा बाहर । जो कुछ दिखाई देता है वह स्वच्छ, सुन्दर और उच्च स्थिति का प्रतीक है । बैठक में एक सोफे का अश्व दृष्टि आता है । रसोई के पास स्वच्छता है और अलमारी में उन्नित सामान व्यवस्थित रूप से रखा हुआ है । आँगन में एक और पलंग पड़ा है, दूसरी ओर दो कुर्सियाँ तथा एक छोटा टेबुल । टेबुल पर नाश्ते के खाली बरतन हैं । पलंग पर उमा लेटी है । वह युवती और रूपवती है । परदा उठाते समय वह कोहनी पर भार टिकाये शून्य में ताकती दिखाई देती है । साड़ी अस्त-व्यस्त है । कुडलाकार कर्णफूल केशों में से होकर कपोल पर आ

गया है। आगे एक खुली पुस्तक है। वह पढ़ते-पढ़ते सोचने लगी है। सहसा धीरे से फुस-फुसाती है।]

उमा—(अपने से बातें करती-सी) जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है जब उन्हीं बातों को हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।

[फुसफुसा कर वह फिर पुस्तक में देखती है, फिर शून्य में दृष्टि गड़ा देती है। उसकी आँखें गंभीर हैं, उसके मुख पर आने वाली सन्ध्या की रक्तिम आभा सौंदर्य बिखेर रही है। वह इतनी खोई हुई है कि नौकर रसोई के बरामदे से आकर बरतन उठा ले जाता है, पर वह नहीं देखती। उसका सिर उसी तरह खुला रहता है और विदा की किरण कर्णफूल पर चमकती है। उसी चमक में केशों की स्निग्धता उभर आती है। तभी पश्चिम वाला बाहर का द्वार खुलता है। माँ अन्दर आती हैं। वे वृद्धा हैं। उन का मुख वेदना से पूर्ण है; आँखों में पीड़ा है और शरीर में थकान। उन्होंने साड़ी पर गरम चादर ओढ़ी है। उनकी पगध्वनि सुन कर उमा चौंक उठती है और आँचल ठीक करती है। माँ उसी के पास आकर धम्म से बैठ जाती है। बैठती-बैठती कहती है।]

माँ—(भर्राया स्वर) तू ने सुना, उमा !

उमा—(अचरज से) क्या माता जी !

माँ—पिछले महीने अविनाश बहुत बीमार रहा था।

उमा—सच ?

माँ—हाँ।

उमा—उन्होंने तो कुछ नहीं बताया।

माँ—वह क्या बताता ? वह क्या वहाँ जाता है ?

उमा—फिर भी सुना होगा। आपसे किसने कहा ?

माँ—मैं कुमार के घर गई थी। वही उसकी निसरानी ने मुझे बताया। कहने लगी—‘तुम्हारा बड़ा बेटा तो बहुत बीमार

रहा । मर कर वचा है ।' सुन कर मैं शर्म से गड़ गई । मेरा वेटा वीमार रहे और मुझे पता भी न लगे । (आंसू भर आते हैं, स्वर लड़खड़ाता है) वचपन में उसे कभी खाँसी भी हो जाती थी तो मैं कई-कई दिन तक न खाती थी, न सोती थी । वे बहुतेरा समझाते थे, नाराज भी हो जाते थे, पर जी नहीं मानता था, और अब..... (आगे बोला नहीं जाता । फूट-फूट कर रो पड़ती है । उमा करुणा से द्रवित उनको सम्हालती है ।)

उमा—(सात्वना से भीगा स्वर) माताजी, मानाजी ! रोओ मत । न, इसमें आपका क्या अपराध है ?

माँ—(उसी तरह) अपराध और किसका है ? सब मुझी को दोष देते हैं । मिसरानी कह रही थी—'वह कैसी भी हो, पर अपने प्राण देकर उसने पति को वचा लिया है ।' अकेली थी, पर किसी के आगे हाथ पसारने नहीं गई । केवल एक-दो बार मिसरानी ने दवा ला दी थी । वरना स्वयं दवा लाती थी, घर का काम करती थी और फिर अविनाश को देखती थी.....

उमा—(टोक कर) माताजी ! भाई साहब को क्या हुआ था ?

माँ—हैजा ।

उमा—(चौंक कर) हैजा.....आ.....

माँ—मर कर वचा है, बेटी । दस दिन बीत गये, अभी तक दफ़्तर नहीं जाता ।

उमा—कैसा अचरज है, उन्हें पता भी न लगा ।

माँ—पता भी हो तो क्या वह बताने वाला है ।

उमा—(चोट खाकर) पर माता जी, यह तो.....।

माँ—(विद्रूप से) मैं जानती हूँ । मेरे ही तो बेटे है । माया-

ममता किसी को भी नहीं छू गई है। हर बात में देश, धर्म और कर्तव्य की दुहाई देना उन्होंने सीखा है। आखिर इनका बाप भी तो ऐसा ही निर्मम था। मुझे याद है 'जिस समय अतुल से छोटा लड़का तड़प रहा था ; बचने की कोई आशा न थी, उस समय वे शांत मन उसको धरती पर लिटाने के लिए सामान हटा रहे थे। दुनियाँ ने दाँतों तले उँगली दबा कर कहा था—'ऐसा भी क्या बाप जो अपने बेटे के लिए भी नहीं रोता।' उसी बाप के ये बेटे हैं। मुझे इन्होंने माया-ममता में फँसी हुई कह कर कोसा है। सदा मेरी निन्दा की है।

[चोट पर चोट खाकर उमा तिलमिलाती है। उसके

भाव पलटते हैं। करुणा पहले खीझ फिर हल्के

रोष में बदल जाती है।]

उमा—लेकिन माता जी ! इसमें सब दोष भाभी का है।

माँ—वह तो है ही; पर बहू.....

उमा (बात काट कर) मैं अच्छी तरह जानती हूँ, वे देखने में बड़ी भोली लगती है परन्तु.....

माँ—भोली.....

उमा—हाँ, बहुत भोली, माताजी ! बहुत प्यारी ! जो एक बार देख लेता है, वह फिर उस रूप को नहीं भूल सकता। बार-बार देखने को मन करता है। बड़ी-बड़ी काली आँखें ; उनमें शैशव की भोली मुस्कराहट, अनजान में ही लज्जा से लाल हुए कपोलों पर रहने वाली हँसी.....

माँ—(और भी अचरज) पर उमा ! तूने क्या अविनाश की बहू को देखा है।

उमा—हाँ, माता जी !

माँ—कब ?

उमा—एक दिन जब आप उनसे गुस्सा हो कर बहुत दुःखी हो रही थी, तब मैं भाभी के पास गई थी। दोपहर का समय था, आप सो गई थी। सच, माताजी ! तब उनके रूप को देख कर मैं चौक उठी थी। बंगाली इतने सुन्दर होते हैं ? मुझे देखकर वे मुस्कराई, फिर गले में आँचल डाल कर प्रणाम किया और जब मैंने अपना परिचय दिया, तो गद्गद् हो उठीं। मुझे छाती से लगा लिया.....

माँ—(वही विस्मय का स्वर) पर तूने मुझे तो कभी नहीं बताया !

उमा—बताना नहीं चाहती थी।

माँ—क्यों ?

उमा—क्योंकि मैं उनसे लड़ने गई थी।

माँ—(भौचक) लड़ने गई थी ?

उमा—जी हाँ ? मैं उनसे लड़ने गई थी। वे आपके दुःख का कारण थीं। वे न होती तो बड़े भइया आपसे कैसे अलग होते ? यही बात मैंने उनसे भी कह दी थी।

माँ—(उत्सुक) सच ?

उमा—जी हाँ।

माँ—तब ?

उमा—तब पहले तो वे मेरी बात सुनकर मुस्करा दी। फिर बोलीं—“इसमें मेरा क्या दोष है ? यह तो.....” मुझे तब क्रोध आ रहा था। बात काट कर मैंने कहा—दोष तुम्हारा नहीं है, तो किसका है ? तुम न चाहती तो बड़े भइया माँ को कैसे छोड़ देते ? तुम अब भी चाहो तो सब कुछ ठीक हो सकता है। तुम उन्हें छोड़ सकती हो। तुम.....तुम.....

माँ—(चौंकती है) उमा, उमा ! यह कहा तुमने.....?

उमा—(भावावेश में) हाँ, मैंने स्पष्ट कहा था—माँ को बेटे से अलग करना पाप है । माँ का हृदय तोड़ना अत्याचार है । उस अत्याचार को दूर करने के लिए प्राण भी देने पड़े तो कम है ।

माँ—(उत्सुकता से) तो उसने क्या कहा ?

उमा—वह बोली—“बहिन, मैं जानती हूँ कि माँ बेटे के सम्बन्ध से बढ़ कर और कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु साथ ही पति से बढ़कर पत्नी के लिए भी और कुछ नहीं है, पति भी वह जिस के लिए उसने समाज की नहीं वरन् अपने हृदय की साक्षी दी है ; जिसे वह प्यार करती है । उसके कहने पर वह प्राण दे सकती है परन्तु उसको दुःखी करके वह किसी को सुखी करने की कल्पना नहीं कर सकती । करेगी तो वह पापिन है । सोचो तुम स्वयं पत्नी हो । यद्यपि तुमने मेरी तरह पति का वरण नहीं किया है, फिर भी तुम उन्हें प्यार करती हो.....।” मुझे यह बात बुरी लगी । मैंने कहा—सब पत्नियाँ अपने पतियों को प्यार करती हैं, मैं भी करती हूँ, प्राणों से अधिक प्यार करती हूँ ! सुनकर वे घबराई नहीं, चौकी भी नहीं, बोली—“सब की बात मैं नहीं कहती, इतना अधिकार मेरा नहीं है, पर मैं यह जानती हूँ, तुम अपने पति को प्यार करती हो, तभी तो यहाँ आई हो । मैं भी अतुल को जानती हूँ, उनका भाई है वह भी कई बार मेरे पास आया है ।”

माँ—(हठात् चौंक कर) अतुल वहाँ गया है ?

उमा—हाँ माता जी । उन्होंने यही कहा था । मुझे भी अचरज

हुआ था। मैंने पूछा—वे यहाँ आते हैं ? तो वे हँस कर बोली—डरो नहीं। वे भाई के पास नहीं आते, दफ़्तर के काम से आते हैं। तुम्हारी बातें उन्होंने ही मुझे बताई हैं। मैं जानती हूँ, तुम उन्हें प्यार करती हो। सोचो तो, कोई तुम से कहे, तुम अतुल को छोड़ दो, क्योंकि उनकी माँ या उनका परिवार इस विवाह से नाराज है तो क्या तुम.....मैं आगे न सुन सकी। मैंने चिल्ला कर कहा—भाभी, बस करो—पर उन्होंने बात पूरी करके दम लिया, बोली—तो क्या तुम उन्हें छोड़ दोगी ? बोलो.....

तब मैंने त्रस्त होकर कहा था—नहीं भाभी। मैं नहीं छोड़ सकूंगी, चाहूँ तब भी नहीं। सुन कर वे मुस्कराई, कहने लगीं—अच्छा। अब छोड़ो इन बातों को। कभी तो आई हो, तभी ले बैठी ये पचड़े ; आओ अन्दर चलें।” पर माता जी, मुझे न जाने क्या हो रहा था। मेरा अंतर्मन काँपने लगा था। उन्हें देखती थी तो जैसे मोहिनी-सी छा जाती थी। मैं थी भी और नहीं भी थी। मोह-ग्रस्त आदमी होता भी है और नहीं भी होता। पर हुआ यही, मैं वहाँ न ठहर सकी। वे पुकारती ही रह गईं।

माँ—(स्वप्न से जाग कर) तो तुम चली आई ?

उमा—हाँ।

माँ—(गम्भीर वेदना का स्वर) उमा ! पर तुम वहाँ हो तो आई अतुल भी जाता है ; तुम सब जाते हो, तुम सब निर्मम हो और मैं जो मोह-ममता में फँसी हुई हूँ, उसकी सूरत को तरसती हूँ। कैसी उल्टी बात है !

उमा—(क्षमा का स्वर) पर माता जी ! हम क्या उनसे मिलने गए थे ? हम तो.....

माँ—(बीच में टोक कर) तुम चाहे किसी लिये गये थे । चाहे वह प्रेम था, चाहे घृणा थी, पर असल बात खिचाव की थी । वह हो कर रही ! काश कि..... (स्वर डूबता है) काश कि मैं भी ऐसा कर सकती ; काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती । हो पाती तो कुल धर्म और जाति का भूत तंग न करता और मैं अपने बेटों से न बिछुड़ती ! उसने मुझ से कहा था—संस्कारों की दासता सब से भयंकर शत्रु है ।

उमा—यह बड़े भइया ने कहा था ?

माँ—हाँ, उसी ने कहा था । मैंने उसे बहुत समझाया, अपने प्रेम की दुहाई दी, पर वह सदा यही कहता रहा—“माँ ! संतान का पालन माँ-बाप का नैतिक कर्तव्य है । वे किसी पर कोई एहसान नहीं करते । केवल राष्ट्र का ऋण चुकाते हैं । वे ऋण-मुक्त हों यही उनका परितोष है । इससे अधिक मोह है, इसलिए पाप है ।” पर मैं क्या करूँ ? मैं, जो इससे अधिक है उसी को पाने को आतुर हूँ । मैं ही क्यों, सभी माता-पिता यही चाहते हैं । तभी तो मैं उसे डाकिन समझती हूँ, समझती हूँ कि उसने मेरे बेटे को मुझ से छीना है । पर वास्तव में दोष उसका नहीं है ।

उमा—माता जी ! लगता तो मुझे भी ऐसा है ।

[अतुल का प्रवेश । स्वस्थ युवक, साँवला रंग, मुख पर दृढ़ता और आँखों में सौम्यता । उसे देख कर उमा उठती है । क्षण भर उसे देखती है । वह सदा की तरह शांत है । फिर रसोई की ओर चली जाती

है । अतुल सीधे आकर कुर्सी पर बैठ जाता है और माँ को देख कर कहता है ।]

अतुल—क्या बन रहा है, माता जी !

माँ—(अनसुना करके) तू ने सुना रे ?

अतुल—क्या ?

माँ—अविनाश बड़ा बीमार था ।

(स्वर भीग जाता है)

अतुल—(जूता खोलते-खोलते) हाँ । उन्हें हैजा हो गया था !

माँ—(अचरज) तू जानता था !

अतुल—हाँ ।

माँ—तूने मुझ से कहा तक नहीं ।

अतुल—तुम से कहता, क्यों ?

माँ—क्यों ; क्या मैं उसकी माँ नहीं थी ?

अतुल—(मुस्कराता है)—माँ तो हो, पर सुनकर क्या करती, क्या उनके पास जाती ?

(माँ सहसा जवाब नहीं देती । अतुल फिर कहता है)

मैं जानता था, तुम वहाँ नहीं जा सकोगी और जाने से भी क्या होता है । जब तक तुम उस नीची श्रेणी की विजातीय भाभी को घर नहीं ला सकतीं तब तक प्रेम और ममता की दुहाई व्यर्थ है । तुम सब निर्मम हो निर्मम.....

माँ—(बीच में टोक कर) मैं निर्मम हूँ ?

अतुल—निर्मम ही नहीं, कायर भी । जिन संस्कारों में तुम पली हो उन्हें तोड़ने की शक्ति तुम में नहीं है, माँ !

[उमा फिर प्रवेश करती है उसके हाथ में चाय की ट्रे है, जिसे वह कमरे में ले जा रही है, पर बात सुन कर रुकती है । कहती है ।]

उमा—लेकिन आप में तो है, आप तो वहाँ गये होंगे ।

अतुल—मुझे वहाँ जाने के लिए कोई काम नहीं था, इसलिए नहीं गया ।

उमा— { एक साथ } (आप भी नहीं गए ? (प्याले भूनभूनाते हैं।)
माँ— { तू भी नहीं गया ?

अतुल—जाकर क्या करता ?

उमा—(विद्रूप) भाई का मरणासन्न होने का समाचार सुनकर भी आपका हृदय नहीं पसीजा ?

अतुल—(शांत स्वर से) उमा, यदि तुम भाई साहब को जानती होती तो ऐसी बात नहीं कहती । मुझे तो क्या, वे मेरे डाक्टरों को भी अपने पास नहीं आने देते ।

उमा—लेकिन फिर भी आप उनके भाई थे, आपको देख कर उन्हें शांति मिलती । वे—

अतुल—(उठता है और नौकर को पुकारता है) रामसिंह, पानी ले आओ ।

(दूर से आवाज आती है ।)

आवाज—लाया सरकार !

अतुल—(उमा की ओर देखकर) देखो उमा ! भाभी से बढ़कर भइया का और कोई नहीं है, यह कटु सत्य हमें स्वीकार करना ही चाहिए । इसलिए उनके होते हमें कुछ भी करने का अधिकार नहीं था और न है ।

[उमा व्रस्त होकर चली जाती है । माँ उठती है । नौकर पानी ले आता है । हाथ-मुँह धोने लगता है । कई क्षण केवल पानी गिरने का शब्द होता रहता है, फिर बाहर का द्वार खुलता है । मिसरानी प्रवेश करती है । प्रौढ़ा है, एक फटी हुई ऊनी चादर ओढ़े है । सिमटी-सी, अतुल को देखती हुई अन्दर चली जाती है ।

अतुल उसे देखकर भी नहीं देखता । फिर अन्दर से बाते करने का स्वर उठता है । शीघ्र ही वह तीव्र हो जाता है । सूर्य की किरणें धीरे-धीरे विदा लेती हैं । संध्या विश्व के रंग-मंच पर प्रवेश करती है, थके विश्व को सहलाने के लिए । तभी माँ कमरे से बाहर आती है । वे अब और भी उद्विग्न हैं । उनके पैर डगमगाते हैं । वाणी रुँध जाती है ।

माँ—अतुल ! अतुल ! तूने और भी सुना ?

अतुल—क्या माँ ?

माँ—अब अविनाश अच्छा हुआ तो उसकी बहू बीमार पड़ गई । कहते हैं उसके बचने की कोई आशा नहीं है ।

अतुल—हाँ, सुना तो है ।

(उमा का प्रवेश)

उमा—क्या सुना है ?

अतुल—यही कि भाभी मरणासन्न हैं ।

उमा—(चकित) क्या ?

माँ—तो तुझे यह भी पता है !

अतुल—हाँ माता जी, मुझे पता है और यह भी पता है कि अपने प्राण खपा कर भाभी ने भइया को तो बचा लिया था, परन्तु भइया के पास भाभी को बचाने के लिए प्राण नहीं है ।

उमा—(अनसुना करके) अतुल ! तो अविनाश की बहू मर जावेगी ?

अतुल—सुना तो ऐसा ही है !

(उमा अचरज से माँ को देखती है, फिर पति को)

उमा—आप क्या कह रहे हैं ? आप वहाँ क्यों नहीं गये ? नहीं, नहीं, आप वहाँ जाइये !

अतुल—(उसी तरह शांत) कोई लाभ नहीं होगा उमा ! भइया में

एक दोष है—वे जो कहते हैं, करना जानते हैं। उनके पास पैसा नहीं है, परन्तु उसके लिए वे किसी के आगे हाथ नहीं पसारेंगे। वे फौलाद के समान हैं जो टूट जाता है पर भुकता नहीं।

उमा—(काँप कर) लेकिन भाभी को कुछ हो गया तो...तो
अतुल—(गम्भीर) भाभी को कुछ हो गया तो...तो क्या होगा,
(सहसा काँपकर) नहीं उमा ! इसके आगे सोचने का अधिकार मुझे नहीं है।

(सहसा माँ आगे बढ़ आती है)

माँ—लेकिन मुझे तो है।

अतुल—(उसी तरह) अधिकार तो तुम्हें भी नहीं है माँ, पर तुम सोचो तो तुम्हें कोई रोक भी नहीं सकता।

माँ—(उद्विग्न) तो मैं सोचती हूँ, अविनाश की बहू को कुछ हो गया तो—शायद अविनाश भी.....

[आगे शब्द नहीं निकलते। वाणी फूट पड़ती है।

उमा अवाक् उन्हें देखती है।]

उमा—(चकित-दुःखित) माता जी, माता जी !

माँ—हाँ, बेटी ! मैं उसे जानती हूँ, वह नहीं बचेगा, नहीं बचेगा।

उमा—(कपित स्वर) माता जी ! आप क्या कह रही हैं ?

अतुल—(गम्भीर) माँ ! तुम इतना जानती हो ?

माँ—हाँ उमा, अतुल ! मैं ठीक कह रही हूँ। वह नहीं बचेगा।
उसे बचाने की शक्ति केवल मुझी में है, केवल मुझी में—

(फिर अचरज)

उमा, अतुल—(एक साथ) माँ—!

माँ—(उसी तरह) अतुल ! इसी लिए कहती हूँ, तू एक बार मुझे

उसके पास ले चल । वह निर्मम है पर मैं माँ हूँ । मुझे निर्मम नहीं होना चाहिए ! मैं उसके पास चलूंगी ।

(उमा हर्ष से काँपती है । अतुल उसी तरह गम्भीर है ।)

उमा—माँ, माँ ! तुम कितनी अच्छी हो !

अतुल—(गम्भीर) अभी चलो माँ, पर चलने के पहले एक बार और सोच लो ! यदि तुम उस नीच कुल की विजातीय भाभी को इस घर में नहीं ला सकी तो जाने से कुछ लाभ नहीं होगा ।

माँ—(अपेक्षाकृत शांत) जानती हूँ अतुल ! इसीलिए तो जा रही हूँ ।

अतुल—(हर्षित स्वर) ऐसी बात है तो चलो माँ, अभी चलो ।
(पुकार कर) रामसिंह ! ताँगा लाओ, अभी इसी वक़्त ।
और उमा ! तुम भी चलो, शीघ्र उमा.....

[कहता हुआ वह बड़े कमरे से होकर बाहर जाता है । उसकी आँखें भर आई हैं । माँ और उमा कई क्षण तक शून्य में ताकती रहती हैं । वातावरण में शांति और स्निग्धता है । सहसा उमा को पुस्तक के वाक्य याद आ जाते हैं । वह फुसफुसाती है ।]

उमा—(फुसफुसाती है) जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, जब चाहे किसी कारण से भी हो, हम उन्हीं बातों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं ।

[उसका मुख प्रकाश से मुखरित हो उठता है ।

नौकर ने पीछे से स्विच दबा दिया है ।

यही पर पर्दा गिर जाता है ।]

श्री हरिकृष्ण प्रेमी—

मालव-प्रेम

[एक ऐतिहासिक एकांकी]

नाटक के पात्र

जयदेव—मालवगण का सेनापति ।

विजया—जयदेव की कुमारी बहन ।

श्रीपाल—विजया का प्रेमी ।

स्थान—मालव देश ।

काल—विक्रमी संवत् के २५ वर्ष के पूर्व ।

[विक्रम संवत् के प्रारम्भ होने से लगभग २५ वर्ष पूर्व का काल । चबल-तट का एक ग्राम । विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी गा रही है । समय रात का प्रारम्भ, विजया की आयु १६-१७ वर्ष के लगभग है । उज्ज्वल गौरवर्ण, शरीर सुगठित लम्बा, अत्यन्त आकर्षक स्वरूप । आँखों में आकर्षण के साथ तेज । वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उसके स्वभाव के अल्हड़पन को व्यस्त करने वाला । सिर से उत्तरीय का पहलू खिसक कर भूमि पर गिर गया है । उत्तरीय के अतिरिक्त एक दुपट्टा वक्ष और कन्धे के आस-पास लिपट पड़ा है । लम्बे बाल वायु में लहरा रहे हैं ।]

विजया—(गाना)

जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर !
जब नयन मैं मूंदती, वह
छवि दिखा मुझको लुभाता ।

जब बढ़ाती हाथ तब
 कुछ भी नहीं है हाथ आता ।
 धूल में मिलते अचानक
 स्वप्न होकर चूर !
 जो निकट इतना, वही है
 हाय, कितनी दूर !
 जो सजन बन 'नयन-तारा'
 लोचनों में है समाया ।
 वह गगन का चाँद होकर
 दूर से ही मुस्कराया !
 इसलिए थमता नहीं है
 आँसुओं का पूर !
 जो निकट इतना, वही है
 हाय, कितनी दूर !

[विजया गीत गाने में तल्लीन है । श्रीपाल आकर उसकी नज़र बचा कर उसके पास खड़ा रहता है । श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है । उसका वेश योद्धा का है । कमर में तलवार, हाथ में धनुष, कंधे पर पीछे की ओर तरकश । वय २५ वर्ष ।]

श्रीपाल—विजया !

विजया—(गाना बन्द करके खड़ी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई) तुम बड़े अशिष्ट हो श्रीपाल !

श्रीपाल—ऐसे कोमल कंठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नहीं देते, विजया !

विजया—तुम अपनी सीमा से बाहर जाते हो !

श्रीपाल—मैंने तुम्हारा अपमान किया क्या, विजया ?

विजया—अपमान तो नहीं किया ।

श्रीपाल—फिर ?

विजया—यहाँ एकान्त में मुझे अस्तव्यस्त वेश में देर तक चुप-चाप खड़े देखते रहना !

श्रीपाल—मैं तुम्हें जीवन भर देखना चाहता हूँ, विजया !

विजया—(किंचित् लज्जा-मिश्रित क्रोध से) किस अधिकार से ?

श्रीपाल—जिस अधिकार से चाँद तुम्हें इस समय देख रहा है ।

विजया—दूर रहकर आकाश से ?

श्रीपाल—हाँ, तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो, स्फूर्ति हो । तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है । तुम्हें पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हें पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है ।

विजया—उधर देखते हो श्रीपाल ! कहीं वर्षा हुई है, इसलिए चम्बल में जल बढ़ गया है । धारा के दोनों ओर चट्टानें हैं । जल को फैलने को स्थान नहीं मिल रहा है । वह कितना जोर कर रहा है । कितने वेग से आगे बढ़ रहा है ।

श्रीपाल—हमारे-तुम्हारे बीच में इससे भी बड़ी चट्टानें हैं, विजया !

विजया—कौन-सी चट्टानें ?

श्रीपाल—तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है । मैं एक साधारण किसान का पुत्र हूँ और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव-जाति की कन्या हो । आकाश की तारिका की ओर पृथ्वी पर पैर रख कर चलने वाला प्राणी कैसे हाथ बढ़ा सकता है ?

विजया—यदि वह तारिका आकाश से नीचे स्वयं उतर आए तो ?

श्रीपाल—मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा ।

विजया—क्यों ?

श्रीपाल—मैं कृपा का दान नहीं चाहता ।

विजया—तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो ?

डाका डालना तो कायरता नहीं है ?

श्रीपाल—मैं इतना छोटा नहीं बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज की चोरी करनी पड़े ।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला ।

विजया—किस से ?

श्रीपाल—तुम्हारे भाई से !

विजया—अच्छा, तो इसीलिए तुमने शस्त्र पकड़े है ?

श्रीपाल—जो हल पकड़ना जानता ह, वह शस्त्र पकड़ना भी जान सकता है ।

विजया—लेकिन उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाय, तब न !

श्रीपाल—मानवता का तिरस्कार करने वालों—सृष्टि के चिरन्तन भाव प्रेम का अपमान करने वालों—के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा । जाता हूँ विजया । तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।

[प्रणाम करता है]

विजया—तुम जा रहे हो, श्रीपाल ! लेकिन मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे ।

श्रीपाल—तुम्हारा प्रेम मेरा मार्गदर्शक है ।

(श्रीपाल का प्रस्थान)

विजया—(श्रीपाल की ओर देखती हुई) विक्षिप्त युवक !

[विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खड़ी उसी ओर देखती रहती है, जिस ओर श्रीपाल गया है । फिर एक लम्बी साँस लेकर शिला पर बैठ

जाती है । कुछ क्षण विचार-मग्न रहकर वही गीत गाने लगती है । गीत आधा ही हो पाता है कि उसका भाई जयदेव प्रवेश करता है । जयदेव भी गौर वर्ण, वलिष्ठ शरीर, बड़ी आँखों और रोवदार चेहरे वाला नवयुवक है । सैनिक वेश-भूषा । कपड़ों से उसका सुसम्पन्न होना प्रकट होता है ।]

जयदेव—(विजया के कंधे पर हाथ रख कर) विजया !

विजया—(चौककर) ओह भैया ।

जयदेव—चौक क्यों उठी, बहन ?

विजया—मैं डर गई थी ।

जयदेव—मालव कन्या होकर डर का नाम लेती है, विजया !

विजया—मैं शस्त्र की धार से नहीं डरती, सिंह के तीक्ष्ण नखों से नहीं डरती । मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नहीं डरती । हिंसा से मैं लड़ सकती हूँ ।

जयदेव—फिर डरती किससे हो ? लड़ किससे नहीं सकती ?

विजया—हृदय की भावनाओं से (दीन स्वर में) भैया !

जयदेव—(विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए) क्या बात है, विजया ?

विजया—मैं अपने हृदय पर विजय नहीं पा सकी हूँ । प्राणों में आठों पहर ज्वाला जलती है । तुम्हारे वंश-गौरव की दीवार मुझे रोक नहीं सकती ? मैं विद्रोह करूँगी ।

जयदेव—किस से ?

विजया—तुम्हारे अभिमान से । अपने भाई मालव-कुल-भूषण जयदेव से ।

जयदेव—तुम मुझसे युद्ध करोगी ?

विजया—हाँ ।

जयदेव—जीत सकोगी ?

विजया—अवश्य !

जयदेव—कैसे ?

विजया—अपनी बलि देकर । इस शरीर को—जिसमें ऐसा मालव-रक्त प्रवाहित है, जो प्रेम के स्वाधीन प्रदेश में जाने से रोकता है—चबल के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित करके ।

जयदेव—बहन, तुझे हो क्या गया है ?

विजया—तुम तो सब जानते हो भैया !

जयदेव—यहाँ श्रीपाल आया था ?

विजया—हाँ !

जयदेव—तभी तुम इतनी चंचल हो उठी हो ! विजया, तुम्हें एक काम करना पड़ेगा ।

विजया—क्या ?

जयदेव—मालव-भूमि को श्रीपाल का मस्तक चाहिए ।

विजया—मालव-भूमि को या तुम्हें ?

जयदेव—मुझे नहीं, मालव-भूमि को ।

विजया—लेकिन उसे तो तुमसे शत्रुता है मालव-भूमि से नहीं ।

जयदेव—वह मेरे अपराध का दण्ड मालव-भूमि को देना चाहता है ।

विजया—मालव-भूमि को या मालव-गण को ।

जयदेव—जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तब क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी ?

विजया—विदेशी शासन मालव पर ?

जयदेव—हाँ, जिन शकों ने सिंध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है उन्हें श्रीपाल ने मालव पर आक्रमण करने को आमन्त्रित किया है ।

विजया—तुम लोगों का वंशाभिमान अपने ही देश में देश के

शत्रु उत्पन्न कर रहा है । तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खींच ले गई है ।

जयदेव—जिस जाति ने सदा भारत के अंगरक्षक बन कर आततायियों को देश में आने से रोका है, जिसने सिकन्दर महान् की विश्व-विजयी यूनानी सेना को हजारों प्राणों की बाजी लगा कर वापिस लौट जाने को बाध्य किया, उसे क्यों न अपने ऊपर गर्व हो ? उसे अपनी सैनिकता एवं बल-विक्रम पर अभिमान क्यों न हो ?

विजया—किन्तु जो जाति सैनिक नहीं है, क्या वह मनुष्य ही नहीं है ? कार्य विभाजन नीच-ऊँच की दीवारे क्यों खड़ी करे ?

जयदेव—यह इन बातों पर विचार करने का समय नहीं है ।

विजया—एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नहीं कर सकोगे ।

जयदेव—तू श्रीपाल और देश दोनों में से किसे चुनेगी ?

विजया—तुम देश और मानवता दोनों में से किसे चुनोगे ?

जयदेव—पराधीनता मानवता का सबसे बड़ा पतन है ।

विजया—और प्रेम ?

जयदेव—जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोटना होगा ।

श्रीपाल मालवा के मार्गों, नदी-पवतों से परिचित है ।

शक-सैन्य सख्या में हम से अधिक है, उनके पास अपार

अश्वारोही दल हैं, अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित है । यदि

उन्हे इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाय

तो परिणाम हमारे लिए भयंकर है । सोचो विजया,

उस समय हमारे देश का क्या होगा ?

विजया—तुम मेरी हत्या कर दो भैया !

जयदेव—तो तुम देश के महत्व को नहीं समझी। तुम्हारे पिता, तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढ़ियों ने इस भूमि की रक्षा में अपना रक्त सींचा है, बहन ! कितनी बहनों ने अपने भाइयों को रणभूमि में विसर्जित किया है, कितनी सुन्दरियों ने अपने यौवन के प्रभात-काल में पतियों को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है ! यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नहीं है, यह देश का प्रश्न है । बोल बहन, तू क्या कहती है ?

(विजया चुप रहती है)

जयदेव—तू सोचना चाहती है, तो सोच ! तू मालव-कन्या है, विजया ! मैं अभी आता हूँ ।

[जयदेव का प्रस्थान । विजया हतबुद्धि सी खड़ी रहती है । फिर वही गीत गुनगुनाने लगती है ।
श्रीपाल प्रवेश करता है ।]

श्रीपाल—विजया !

विजया—अच्छा हुआ तुम आ गये नहीं तो मुझे तुम्हारे पास जाना पड़ता ।

श्रीपाल—हाँ मैं आ गया हूँ । मैंने अपना निश्चय बदल दिया है । मैं तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ ।

विजया—लेकिन श्रीपाल, मैंने अपना निश्चय बदल डाला है ।

श्रीपाल—क्या ?

विजया—मुझे तुम्हारा मोह छोड़ना होगा ।

श्रीपाल—फिर तुम मेरे पास क्यों आना चाहती थीं ?

विजया—हम बचपन में एक साथ खेले हैं । अब जीवन का अन्तिम खेल भी तुम्हारे साथ खेल लेना चाहती हूँ । बोलो खेलेगो, श्रीपाल !

श्रीपाल—अवश्य, विजया !

विजया—तो लाओ, तुम्हारे बलिष्ठ हाथों को मैं अपने उत्तरीय से बाँध दूँ !

श्रीपाल—क्यों ?

विजया—आँख-मिचौनी में आँख बन्द करते हैं, लेकिन यह नये प्रकार का खेल है इसमें हाथ बाँधने पड़ते हैं। लाओ हाथ बढ़ाओ !

[श्रीपाल हाथ बढ़ाता है, विजया उसके हाथ अपने उत्तरीय से खूब कसकर बाँध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश]

श्रीपाल—(जयदेव को देखे बिना ही) अब आगे ?

विजया—आगे का खेल मेरे भैया खेलेंगे (जयदेव की ओर उँगली उठाती है।)

श्रीपाल—विजया, तुम ऐसा छल कर सकती हो, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी !

विजया—मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने प्रियतम को मैंने देश-द्रोह से बचा लिया।

जयदेव—(श्रीपाल से) तुम मेरे अपराध का दण्ड अपनी मातृभूमि को देना चाहते हो ?

विजया—और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है।

श्रीपाल—जयदेव ! तुम वीर हो ! साहस और पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मालव-जाति के गौरव हो, तुम छल द्वारा मुझे वन्धन में बाँधना पसन्द करते हो ?

जयदेव—इस समय देश के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न है श्रीपाल ! उदारता के लिए अवकाश नहीं है।

विजया—(श्रीपाल से) प्रियतम, मैं अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। (गले से हार उतार कर पहनाती हुई) यह मेरे प्रेम का अन्तिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयंवर है। आज मालव-जाति की परम्परा के विरुद्ध कृपक-कुमार श्रीपाल को मैं वरमाला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बँधे हुए हैं, विजया ! मैं तुम्हें कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नहीं दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। तुम्हारे चरणों की रज मुझे मिल सकती है ? मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

[चरण छूती है।]

श्री मोहन राकेश—

कंप्रयु

[एक ध्वनि-एकाकी]

नाटक के पात्र

एक संन्यासी, एक युवक,
एक स्त्री और उसका बच्चा रोहित,
रेणु और शीला दो लड़कियाँ,
पहली कार वाला नवयुवक
और उसका साथी वृद्ध,
एक मियाँ, लाला जी, और शर्मा जी,
सरदार साहिब और उनकी पत्नी,
मुनादी वाला, एक सन्तरी
और टैक्सी वाला ।

काल—जून, १९४७

स्थान—लाहौर, रीगल सिनेमा के पास का बस-स्टॉप ।

(दो एक कारो के गुजरने की आवाज)

प्रवक्ता की आवाज—लाहौर, जून उन्नीस सौ सैंतालीस के रीगल
सिनेमा के पास का बस-स्टॉप ।

[हुक्का गुड़गुड़ाने का शब्द । फिर संन्यासी के खाँसने का
शब्द । फिर पैरो की आहट सुनाई देती है ।]

युवक—(पास आकर) क्यों महात्मा जी, अभी दो नम्बर की बस
तो नहीं गई ?

संन्यासी—कह नहीं सकते साहब ! हमारे सामने नहीं गयी ।
हम आध घण्टे से बैठे हैं । आ जाएगी, बैठ जाइए ।
(अपनापन दिखला कर) जगह गर्म है, टाट बिछा दें ? गर्मी
के दिनों में ये पत्थर के बैच इस तरह तपने लगते हैं
कि क्या कहा जाय ।

पुष्क—नहीं कोई ज़रूरत नहीं । (अपने आप से) एक वस सवा
वज्रे गुज़रती है और दूसरी डेढ़ वजे । पहली तो अब
तक चली जानी चाहिए थी ।

संन्यासी—(हुक्का गुड़गुड़ा कर) वस की भी क्या सवारी है !
(ज़रा हँसकर) बड़े-बड़े बाबू पीछे दौड़ते हैं पर जगह
नहीं मिलती । (कुछ रुक कर) आपको कहाँ जाना है
सरकार ?

(युवक उत्तर नहीं देता)

संन्यासी—हम तो लाट साहब के दफ़्तर उतरेंगे । आप आगे
जाएँगे ?

युवक—(गम्भीरता पूर्वक)—मुझे कृष्णनगर जाना है ।

संन्यासी—लगते तो वही दो आने हैं, कृष्णनगर उतरो चाहे
लाट साहब के दफ़्तर । उस दिन कोई कह रहा था कि
किराया घटने वाला है । क्यों ठीक है जी ?

युवक—(उकताये स्वर में) मुझे नहीं पता बाबा जी !

संन्यासी—बैठ जाइए । क्या पता कितनी देर में आये ? (फिर
ज़रा हँस कर) अच्छा, हाँ ! पतलून की बजह से बैठना
मुश्किल है ! अंग्रेज़ ने भी क्या चीज़ बनायी है पहनने की !

[कुछ दूर से स्त्री की आवाज़ सुनाई देती है.....“घर
पहुँच ले । देखना पापा से किस तरह पिटवाती हूँ ? कहना ही नहीं
मानता ? कह रही हूँ रोहित, ठीक तरह चल, नहीं तो आज तेरा वह

हाल करवाऊंगी कि याद करेगा !” क्रमशः आवाज़ निकट आ जाती है ।]

स्त्री—ओह क्या मुसीबत है । (युवक से) क्यों भाई साहब, तीन नंबर की बस चली गई ?

युवक—(भद्रतापूर्वक) जी, मेरा ख्याल है अभी नहीं गयी, शायद आने ही वाली है !

स्त्री—(कुछ आश्वस्त स्वर में) थैक गाँड ! मैं दो फर्लांग से दौड़ी आ रही हूँ । शहर में फिर दंगा शुरू हो गया है ।

युवक—फिर दंगा शुरू हो गया ?

स्त्री—आपको मालूम नहीं ? कई बाजारों में खूनखराबी चल रही है । देखते-देखते सारी बीडन रोड बन्द हो गयी । मुझे बच्चे के लिए रेशमी मफलर लेना था, वह बीच में ही रह गया । बस ये चार तौलिये ही लिए थे कि शोर मच गया । आजकल तो घर से बाहर जाना ही ठीक नहीं ।

बच्चा—(शिकायत के स्वर में) मम्मी, हमें बोतल नहीं पिलाई !

स्त्री—बोतल बेटा, अब घर चल कर पीना । (युवक से) एक तो मारे गर्मी के बुरा हाल है । बच्चा भी क्या करे इतनी कड़ाके की धूप पड़ रही है और ऊपर से यह दंगा फ़साद । अब बस जाने कितनी देर तक आएगी !

सन्यासी—(हुक्का गुड़गुड़ाकर) मेम साहब, ये तौलिए किस भाव के हैं ?

स्त्री—(तिरस्कारपूर्ण स्वर में) तुझे वावा, इस समय तौलिए सूझ रहे हैं ? (फिर जैसे कुछ उदारता के साथ) चौबीस रुपये दर्जन के तौलिये हैं । मँहगाई की कोई हद है ?

सन्यासी—चीज़ अच्छी है । पैसे भी अच्छे लिये हैं उसने ।

अच्छा, मेम साहब दंगा किधर हुआ है ? शहर में अपना एक भतीजा रहता है, पापड़ मंडी के आस-पास ।

युवक—(उकताये स्वर में) जा बाबा, पहले जा कर उसकी खबर ले आ ।

संन्यासी—अब तो पहचाना भी नहीं जाएगा साहब ! पिछली लड़ाई के दिनों के घर से निकले दो दिन पहले यहाँ लौट कर आये हैं । फिर ससार के झझट एक बार छोड़ दिए सो छोड़ दिए । (हुक्के का कश लगाता है ।)

स्त्री—(युवक से) आप कितनी देर से खड़े हैं ?

युवक—पाँच-सात मिनट हो गये ।

संन्यासी—हमको बैठे आधा घण्टा हो गया (युवक से) क्यों सरकार, लाट साहब का दफ़तर कितने वजे बन्द होता है ?

युवक—(क्रोध के साथ) ईडियट !

संन्यासी—कितने वजे कहा सरकार ?

युवक—क्यों जा कर गवर्नर से मिलना है ? (फिर जैसे अपने आप से) ओह एक पाँच हो गये । बस बहुत लेट हो गयी ।

बच्चा—मम्मी मैं लाल वोतल पीऊँगा ।

संन्यासी—(जरा हँस कर) हहह ! लाल वोतल पीएगा ? वोतल का मतलब पता है ?

स्त्री—(जरा तलख होकर) बाबा, जरा तमीज से बात कर । बच्चे से इस तरह का मजाक किया जाता है ?

[दूर से दो लड़कियों की बातचीत का स्वर क्रमशः पास की ओर आता है ।]

एक लड़की—कई लोग खड़े हैं, इसका मतलब है कि बस अभी नहीं गयी ।

२ लड़की—हो सकता है कि ये लोग दो नम्बर की बस का इन्तजार कर रहे हों !

१ लड़की—(पास आकर युवक से) भाई साहब, आप किस बस का इन्तजार कर रहे हैं ;

युवक—जी, दो नम्बर की ।

१ लड़की—(स्त्री से) और आप बहन जी ?

स्त्री—तीन नम्बर की ।

१ लड़की—हमें भी तीन नम्बर पकड़नी है ।

संन्यासी—क्यों जी लाट साहब के दफ्तर किस नम्बर की बस जाती है ? (किसी के उत्तर न देने पर अपने आप से) सभी जानती होंगी । बड़े लाट का दफ्तर है !

१ लड़की—मैं कहती हूँ रेणु, कि अब हमें सीधे घर ही चलना चाहिए । रमेश से मैंने डेढ़ बजे घर आने के लिए कह रखा है । आज उससे कुछ कविताएँ सुनने की बात थी ।

रेणु—भई, मुझ से उसकी कविताएँ नहीं सुनी जाती । वास्तविकता की दुनिया से दूर न जाने वह किस कल्पना की दुनिया में रहता है । तुम सुन लेती हो क्योंकि वह तुम से.....

शोला—(जरा दबे स्वर में) चुप रह रेणु ! लोग सुन रहे हैं ।

रेणु—सुनने दो । मैं कहती हूँ.....

शोला—(चुप कराने के स्वर में) रेणु !

संन्यासी—यह चश्मा बीबी जी, आप का गिरा है ?

रेणु—ओह, मेरे गॉगल्ज ?

शोला—देख रेणु, बस आ रही है ।

स्त्री—तीन नम्बर लगती है ।

युवक—मेरा ख्याल है दो नम्बर है ।

रेणु—पर, इस पर तो कोई नम्बर ही नहीं है ।

शीला—वह उधर चली गई वर्कशाप को ।

युवक—बड़ी गन्दी सर्विस है । बम्बई में हर तीन चार मिनट के बाद बस मिल जाती है ।

[दूर घम् घम् की अस्पष्ट सी आवाज सुनाई देती है ।]

स्त्री—(सहमे स्वर में) क्यों जी, यह गोली की आवाज है ?

शीला—नहीं ! गोली की आवाज तो नहीं है ।

स्त्री—जरा ध्यान से सुनिये । शहर में दगा हो रहा है ।
आपने नहीं सुना ?

रेणु—हमने तो सुना है कि एक ही बाजार में कुछ भगड़ा हुआ है

युवक—जी नहीं ! सुना है कि सारे शहर में जोर का दंगा हो रहा है । मुझ भी यह गोली चलने की ही आवाज लगती है ।

शीला—चल रेणु, लौट चले ।

रेणु—कहाँ, श्यामा के घर ? तुम चली जाओ । मुझ से बैठ कर उसके उपदेश नहीं सुने जाते ।

(दूर से कुछ भगदड़ का शब्द सुनाई देता है ।)

स्त्री—(घबराते हुए स्वर में) सुनिए शोर बढ़ रहा है ।

युवक—(अस्थिरता-पूर्वक) देखिये, लोग भागते हुए आ रहे हैं ।
चलिये उस पिछली गली में छिप जाये ।

(जल्दी-जल्दी जाने का शब्द)

स्त्री—जल्दी चल रोहित ! जल्दी कर ।

(बच्चे को घसीट कर ले चलती हैं)

रोहित—(चलता हुआ) मम्मी, जूता पैर में काटता है ।

स्त्री—उतार कर हाथ में ले ले । जल्दी कर ।

रोहित—मम्मी एक जूता पीछे रह गया है ।

स्त्री—तू आज मेरी जान लेगा । उठा जूता । चल ।

शोला—अब क्या करें रेणु ? चल, हम भी गली में छिप जायें ।

रेणु—कालेज के दिनों में तू एथलीट थी, अब बुजदिल हो गई ?

(दूर से एक कार आने का शब्द)

ठहर, मैं वह कार रोकती हूँ ।

(कार के बिना रुके निकल जाने का शब्द)

शोला—(अस्थिर स्वर में) रेणु देख दुनिया भाग रही है ।

(कुछ लोगों के भागते हुए निकलने का शब्द)

रेणु—इनसे पूछा जाए कि इधर क्या बात हुई है । (किसी से)

क्यों भाई साहब, उधर भी दंगा शुरू हो गया क्या ?

(कोई उत्तर नहीं मिलता)

शोला—जरूर कुछ हुआ है रेणु । लोग जवाब देने के लिए भी नहीं रुकना चाहते ।

रेणु—देख, वह एक और कार आ रही है । मैं हाथ देती हूँ ।

(कार पास आकर रुक जाती है)

रेणु—भाईसाहब, आप हमें लिफ्ट दे सकते हैं ? सुना है इधर भी दंगा शुरू हो गया है । हम दोनों अकेली हैं, बस कोई आ नहीं रही ।

कार में बैठा नवयुवक—आप को कहाँ जाना है ?

रेणु—चीबुर्जी । हम आपका एहसान मानेगी ।

कार में बैठा वृद्ध—पर हम तो मॉडल टारुन जा रहे हैं ।

नवयुवक—क्या हर्ज है, अंकल । हम उधर से हो कर जा सकते हैं । यहाँ इनकी जान को खतरा है । (रेणु से) आइए, बठ जाइए ।

रेणु—बहुत बहुत धन्यवाद । आप को हमारी वजह से कष्ट तो होगा ।

नवयुवक—इसमें कष्ट की कोई बात नहीं जी । मनुष्य की जान खतरे में छोड़ जाना पाप है । आप आगे आ जाइए ।

रेणु—बैठ शील !

(कार के दरवाजे खुलने और वन्द होने का शब्द)

संन्यासी—बाबू जी !

नवयुवक—क्या है ?

संन्यासी—बाबू जी हमें लाट साहब के दफ्तर जाना है ।

नवयुवक—सीधी सड़क जाती है । आगे से बाये हाथ को मुड़ कर किसी से पूछ लेना ।

(कार स्टार्ट होकर चली जाती है)

संन्यासी—वाह रे नीली छतरी वाले, तेरी माया !

[शोर कुछ बढ़ता है कुछ लोग भागते हुए निकलते हैं । एक गिर कर चोट खा जाता है । उसकी जेब से कुछ पैसे भी गिर कर इधर उधर बिखर जाते हैं ।]

अधेड़ व्यक्ति—या अल्लाह !

संन्यासी—ज़्यादा चोट तो नहीं आई, मियाँ जी ? यह देखिये एक चवन्नी इधर गिरी है । एक दुवन्नी वह रही । क्यों मियाँ जी, किस जगह दगा हो रहा है ?

मियाँ—पता नहीं सुना है शहर में कहीं शुरू हुआ है ।

संन्यासी—फिर इधर लोग इस तरह क्यों भाग रहे हैं ?

मियाँ—मालूम नहीं । लोग पीछे से भागते आ रहे थे.....

संन्यासी—आप भी तो भाग रहे हैं न ?

मियाँ—अरे भाई, सब लोग जो भाग रहे हैं । कोई खतरे की ही बात होगी ।

संन्यासी—मियाँ जी, भागिए नहीं, यही ठहर जाइए। अभी बस आ जाएगी।

मियाँ—वह देख वावा, दो आदमी और भागते हुए आ रहे हैं।
इस वक्त यहाँ रुकना ठीक नहीं। (भागता हुआ चला जाता है।)

संन्यासी—हूँ ! सचमुच बस ने देर ही कर दी। कोई बात नहीं। पहुँचाएगी फिर भी पहले ही। आदमी और मशीन का क्या मुकाबिला।

(दो व्यक्ति भागते हुए वहाँ आते हैं)

एक—(हाँपता हुआ) ओह ! दम फूल गया।

दूसरा—अब बस मिल जाए तो बात है ! क्यों वावा, बस चल रही है ?

संन्यासी—थोड़ी देर हुई एक उधर को गई है धर्मप्राण ! इधर वाली अभी नहीं आई।

पहला—कितनी देर से बैठे हो ?

संन्यासी—आधा घण्टा हो गया।

पहला—अब आने ही वाली होगी।

दूसरा—देखो, कहते थे गोली चल रही है। मैं पहले ही जानता था कि यह मुनादी की आवाज है।

पहला—खैर आपको मान लिया लाला जी ! भागे आप बहुत तेज। पहनी भी आप ने धोती थी, मेरी तो पतलून ढीली हो गई।

लाला—(कुछ गर्वित भाव से) पिछले साल मैं हर रोज सवेरे लारेस बाग में दौड़ लगाया करता था। आदमी को जिंदगी में हर चीज के लिए तैयार रहना चाहिए। (कुछ रुक कर ज़रा धीमे स्वर में) क्यों शर्मा साहब, पास में कोई हथियार तो नहीं है ?

शर्मा—(उसी तरह दबे स्वर में) मेरे पास ? फल काटने का एक चाकू जेब में पड़ा है ।

लाला—(और भी धीमे स्वर में) यहीं कहीं फेंक दीजिए । क्या पता तलाशी-बलाशी होने लगे ?

शर्मा—(डर कर) किस तरफ़ फकूँ ?

लाला—उधर जाकर गली की तरफ़ फेंक दीजिए ।

शर्मा—(कुछ दूर से) फेंक दूँ ? कोई देख तो नहीं रहा ?

लाला—नहीं, लोग अभी दूर है ।

(चाकू के फेंके जाने पर उधर से स्त्री की चीख सुनाई देती है ।)

लाला—(घबरा कर) बाबा जी, उधर कौन लोग है !

संन्यासी—जी, एक दो नम्बर वाला है । दो तीन नम्बर वाले हैं ।

लाला—(और भी घबराये स्वर में) पुलिस के सिपाही हैं ?

संन्यासी—नही धर्मप्राण, बस की सवारियाँ हैं ।

[दूर से युवक की आवाज़ सुनाई देती है, “बाबा जी, पत्थर चल रहे हैं ?”]

संन्यासी—(दूर सुनाते हुए) पत्थर नहीं है सरकार । इन लाला जी ने अपना हथियार फेंका है आ जाइए, अभी कोई खतरा नहीं है ।

युवक—(निकट आता हुआ) किसने हथियार फेंका है ?

शर्मा—(घबराये स्वर में) इनको गलतफ़हमी हुई है भाई साहब । हमने कोई हथियार नहीं फेंका ।

युवक—(अपने आप से) आज तो बड़ी मुश्किल में जान फँस गई ।

लाला—(कुछ आश्वस्त स्वर में) आप भी भाग कर आ रहे हैं ?

युवक—जी नही । मैं लंच के लिए घर जा रहा हूँ । मुझे कृष्ण-नगर की बस पकड़नी है ।

लाला—हम को भी कृष्णनगर ही जाना है। अभी बस आ जाएगी। मालरोड पर फिलहाल कोई खतरा नहीं है।

[दूर से स्त्री की आवाज सुनाई देती है, “इधर ला चाकू। फेंक ! फेंक। सुनता है कि नहीं रोहित ! सुन।”]

रोहित—(भाग कर इधर को आता हुआ) हम नहीं दगे चाकू। हम यह चाकू अपने पास रखेंगे।

स्त्री—(उसके पीछे आती हुई) इधर आ रोहित ! सुनता है या नहीं ?

युवक—डरिये नहीं बहिन जी ! इधर आ जाइए, बलवा निकल गया है।

लाला—पर इधर तो कोई बलवाई नहीं आये।

युवक—दूर से गोली चलने की आवाज तो आ रही थी।

लाला—वह गोली चलने की नहीं, मुनादी की आवाज थी।

स्त्री—मुनादी की आवाज थी ? मेरी तो सुन कर जान ही निकल गई थी। रोहित, चाकू फेंक दे। बेटा, ऐसी चीज से नहीं खेलते ! हाथ-वाथ कट जाता है।

रोहित—हम नहीं फेंकेगे; हम यह चाकू घर ले जाएँगे !

स्त्री—ले चल बाबा ! पर अपने हाथ से छोड़ दे। ला इधर मुझे दे, मैं पर्स में रख लूँ। घर चल कर ले लेना। हाँ ! ऐसे कहा मानते हैं। बड़ा अच्छा बेटा है। (फिर जैसे दूसरो के सामने व्याख्या करती हुई) बच्चे को तो हर जगह खेल ही सूझता है।

शर्मा—जी यह चाकू मैं.....

लाला—(बहुत दबे स्वर में) चुप रहिए शर्मा साहब ! जाने दीजिए।

[निम्नलिखित बातचीत करते हुए एक सरदार साहब और उनकी पत्नी कुछ दूर से आते हैं]

सरदार—अब भी ठुमक-ठुमक कर चल रही है ! जब भी तुम्हें साथ लेकर निकलता हूँ, कोई-न-कोई मुसीबत खड़ी हो जाती है । पिछली बार आँधी आ गई थी, अब की बार दगा हो गया ।

पत्नी—मैंने कब कहा था कि मुझे साथ लेकर चलो ? आप ही कहते थे कि बिना बीबी को लिये किसी के घर खाना खाने जाये तो लोग बुरा मानते हैं । मेरी तो दोनों तरफ मुसीबत है । न चलूँ तो गँदार अनपढ़, और चल पड़ूँ तो डॉट-डपट ।

सरदार—अब चुप भी कर, रास्ता चलते भगडने लगती है ।

पत्नी—मैं कहती हूँ ताँगा ले लो । मुनादी वाला कह रहा था कि जल्दी से घरों में पहुँच जाओ ।

सरदार—तेरे तो कान बोलते हैं । मुनादी वाला कह रहा था कि भागो नहीं गहर में अमन हो गया है ।

लाला—सरदार साहब, आपने मुनादी कहाँ सुनी है ?

सरदार—जी, पास से नहीं सुनी ! दूर से आवाज आ रही थी ।

लाला—आप ने भी आवाज ठीक से नहीं सुनी । मुनादी वाला कह रहा था कि मेवा मंडी में.....

शर्मा—(बीच में काट कर) मेवा मंडी में नहीं, अकवरी मंडी में.....

लाला—हाँ अकवरी मंडी में, कई आदमी आग में जल गये हैं.....

शर्मा—(फिर बात काट कर) आदमी नहीं, कई मकान आग में जल गये हैं !

लाला—दोनों ही बातें होंगी ।

युवक—पर ऐसी मुनादी तो की ही नहीं जा सकती। यह कानून की नजर में अपराध है।

लाला—(जरा लटके हुए स्वर में) तो कोई और बात होगी। मुनादी हो जरूर रही थी।

शर्मा—बीच में अकवरी मंडी का नाम भी जरूर था।

लाला—आग लगने लगाने की बात भी थी।

सरदार की पत्नी—मैं कहती हूँ तांगा ले लो। आज कोई बस नहीं आएगी।

सरदार—(झुंझलाए स्वर में) पर तांगा कोई हो भी। सारी सड़क खाली पड़ी है।

संन्यासी—हम ने आधे घंटे से एक भी तांगा नहीं देखा।

स्त्री—बाबा, वे दो लड़कियाँ कैसे चली गईं ?

संन्यासी—जी, मोटर में बैठ कर गई हैं।

स्त्री—हाय, तीन नम्बर की बस चली गई ?

संन्यासी—जी नहीं, एक छोटी मोटर आई थी। बाबू उनको बिठा कर ले गये। हमको नहीं ले गये।

स्त्री—वे उनकी जान-पहचान के थे ?

संन्यासी—थे तो नहीं। अब हो जायेंगे। पड़े-लिखो में जान-पहचान होते क्या देर लगती है ?

[मुनादी के नगाड़े की धम्-धम् निकट आने लगती है। इधर सब प्रपनी अपनी बात कर रहे हैं]

स्त्री—वे लड़कियाँ मुझे देखने में ही वैसी लगती थी।

सरदार की पत्नी—आज जाने किस वक्त घर पहुँचेंगे ?

सरदार—अजब मुसीबत में जान फँसी है।

रोहित—मम्मी, दोतल कब पिलाओगी ?

युवक—एक मिनट चुप रहिए। जरा मुनादी सुन लेने दीजिए।

[सब चुप कर जाते हैं। कुछ दूर से मुनादी वाले की आवाज सुनाई देती है, “बहुवम जनाव डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुर लाहीर, मुन्दर्जा जैल इलाको मे फ़सादात की वजह से आज दोपहर बारह बजे से कल सुबह नौ बजे तक कर्फ्यू ऑर्डर जारी रहेगा.....”]

सब फिर अपनी अपनी कहने लगते हैं। इससे मुनादी के शब्द ठीक सुनाई नहीं देते।]

लाला—इसका मतलब है शहर में काफी कुछ हुआ है।

शर्मा—आज घर पहुँच जाये, तो गनीमत है।

स्त्री—कहती थी रोहित, आज जिद न कर, फिर किसी दिन ले चलूँगी।

युवक—ठहरिए सुन तो लेने दीजिए !

[इसी बीच मुनादी चल रही है, “शहर के अन्दर का सारा इलाका, रेलवे रोड, ग्वालमडी और निस्वत रोड।” सबके चुप कर जाने पर मुनादी का शेष भाग सुनाई देता है। “इनके इलावा रामनगर, सतनगर, कृष्णनगर, चौबुर्जी, नया कोट.....”]

स्त्री—(फिर बीच में) हाय ! नए कोट में भी लग गया !

युवक—सुन तो लीजिए।

[मुनादी चल रही है। ‘मुजग और चैरिंग क्रॉस के नीचे माल रोड—इन सब इलाको में आज दो बजे से कल सुबह नौ बजे तक कर्फ्यू ऑर्डर जारी रहेगा। इन सब इलाको में दफा एक सौ चवालीस भी नाफिज रहेगी।’ परन्तु दफा १४४ शब्द सुनने के बाद ही इन लोगों में बातचीत आरम्भ हो जाती है]

युवक सरदार तथा लाला—(एक साथ) दो बजे से ?

शर्मा—यह तो अंधेरे हैं।

युवक—आगे तो सुनिए !

[परन्तु केवल धम् धम् का शब्द सुनाई देता है जो क्रमशः दूर होता जाता है।]

सरदार की पत्नी—मैने कहा नहीं था कि ताँगा ले लो ।

सरदार—(क्रोध के साथ) ताँगा था वहाँ, जो ले नेता ?

स्त्री—(रोहित को झिडक कर) गले पड़ गया कम्बस्त कि आज
ही रेशमी मफलर लूंगा । अब ले ले रेशमी मफलर ! साथ
ही मम्मी की जान भी ले ले ।

सन्यासी—क्यो जी, क्या लाट साहब के दफ़तर भी लग गया ?

युवक—(चिढ़ कर) हों बाबा, लग गया लाट साहब के दफ़तर भी ।

सन्यासी—(दार्शनिक स्वर में) आधा घण्टा यूँ ही बैठे !

स्त्री—क्यो जी, अब क्या होगा ? बस नहीं आएगी ?

सरदार की पत्नी—अब घर कैसे पहुँचेंगे ?

सरदार—वह एक सतरी आ रहा है । उससे पूछते है (आवाज
देकर) सतरी साहब !

युवक-लाला-शर्मा—(एक साथ) सतरी साहब !

संतरी—(निकट आता हुआ) आप लोग यहाँ क्यों जमा है ?
पता है कफ़रू का वक्त हो रहा है ?

लाला—जनाव, हम लोग बस की राह देख रहे है । सब
कृष्णनगर की सवारियाँ है ।

स्त्री—जी नहीं, हम को नए कोट जाना है ।

सरदार—हम यतीमखाने जा रहे है ।

सन्यासी—हमे लाट साहब के दफ़तर उतरना है ।

संतरी—जहाँ जाना है चले जाओ । बस सर्विस बन्द कर दी
गई है ।

[गव के मुख से आञ्चर्य और निराशासूचक 'ओह' की
ध्वनि निकलती है ।]

स्त्री—हे ईश्वर, अब क्या होगा ? कहती थी रोहित, न चल !
अब और ले तू रेशमी मफलर !

संतरी—चले जाओ नहीं तो दो बजे सब गिरफ्तार कर लिए जाओगे ।

संन्यासी—क्यों हज़ूर, साधु-महात्माओं को भी छूट नहीं ?

संतरी—सरकारी कानून है, किसी को छूट नहीं ।

संन्यासी—जानवर घूम लेते हैं सरकार । साधु-महात्माओं का कुछ तो ख्याल होना चाहिए ।

सरदार—पर संतरी साहब, इतनी जल्दी हम लोग किस तरह घर जा सकते हैं ?

संतरी—यह सोचना आप लोगों का काम है, मेरा काम नहीं ।
(चला जाता है)

लाला—क्यों सरदार जी, अब क्या करें ?

सरदार—मैं आप से पूछने वाला था ।

युवक—अब तो पैदल भी नहीं पहुँच सकते ।

स्त्री—इतने खतरे में पैदल जाया भी कसे जा सकता है ? मेरे साथ बच्चा है, सामान है,.....

सरदार—वह देखो, एक टैक्सी आ रही है ।

[दूर से एक टैक्सी के निकट आने का शब्द—युवक, लाला और शर्मा “टैक्सी” कह कर आवाज़ देते हैं ।]

सरदार—क्यों भाई, टैक्सी खाली है ?

टैक्सीवाला—खाली है साहब ! चलना हो तो बैठिए ।

लाला—(संकोच के साथ) बैठिए सरदार साहिब !

सरदार—आप लोग बैठिए । हम भी.....पीछे बैठ जाएँगे ।

शर्मा—(युवक से) चलिए बैठिए भाई साहिब ! आपको कृष्णनगर जाना है ।

युवक—(स्त्री से) बैठिए बहन जी !

स्त्री—मैं भी बैठ जाऊँगी । पहले आप लोग तो बैठें ।

संन्यासी—लो, हम पहले बैठ जाते हैं। जल्दी पहुँचने की बात है। पहले क्या और पीछे क्या (टैक्सी का दरवाज़ा खोल कर बैठता हुआ) बैठे बैठे हुक्का भी ठंडा हो गया !

टैक्सीवाला—जल्दी सब लोग बैठ जाइए, और पच्चीस रुपये किराया पेशगी दे दीजिए।

[सब के मुख से फिर हताशता-सूचक ध्वनि निकल पड़ती है]

सरदार—कितने रुपये घंटा ?

युवक—कितने आने मील ?

टैक्सीवाला—इस वक्त घंटे मील का हिसाब नहीं है साहब ! चलना हो तो जल्दी कीजिए वर्ना मैं टैक्सी ले जाऊँ।

युवक—एक बज कर चालीस मिनट हो गये हैं।

लाला—आप के पास कुछ पैसे हैं शर्मा साहब ? मेरी जेब में तो कुल आठ ही आने हैं।

शर्मा—मेरा बटुवा कोट की जेब में है और कोट मैं पहन कर नहीं आया। भाई साहब से पूछो।

लाला—आपके पास भाई साहब ?

युवक—(खिसियाता-सा) जी, मेरे पास तो बस का किराया है।

लाला—सरदार साहब, आपके पास.....

सरदार—जी मेरे पास दो रुपये हैं।

स्त्री—(अपने आप) मैं अपना हिस्सा दे सकती हूँ—चार और बच्चे के दो—कुल छः रुपये।

लाला—सब मिलाकर कितने हुए ?

युवक—आठ रुपये दस आने।

लाला—क्यों भाई, आठ रुपये दस आने में चलेगा ? तीन आदमियों को कृष्णनगर उतार कर बाकी लोगों को नये कोट की तरफ ले जाना।

टैक्सीवाला—नहीं साहब—(संन्यासी से) उतर जाओ वावा जी !

संन्यासी—क्यों, उतर क्यों जाएँ ?

टैक्सीवाला—आगे आकर बैठ तो गये, पर जेब में पैसे भी हैं ?

संन्यासी—पैसे नहीं तो क्या यूँ ही बैठ गये है ?

टैक्सीवाला—साढ़े सोलह रुपये हैं ?

संन्यासी—साढ़े सोलह रुपये क्यों ?

टैक्सीवाला—क्यों—क्यों कुछ नहीं । साढ़े सोलह रुपये नहीं हैं तो उतर जाओ । अभी पुलिस की गाड़ी आएगी । उसमें बैठ कर हवालात चले जाना ।

संन्यासी—(असमंजसपूर्ण स्वर में) धर लिये आज ! इतने रुपये पता नहीं गाँठ में निकलेगे भी कि नहीं !

टैक्सीवाला—नहीं निकलेगे तो गाड़ी खाली कर दो । जल्दी करो ।

संन्यासी—ठहर भाई ! देख तो ले.....गाँठ भी कमंडलु में ही फँस गई । [शेष लोगों में उत्सुकता की हलचल]

शर्मा—महात्मा जी, गाँठ तो बहुत मोटी है !

संन्यासी—महाराज, सब सिक्के ही सिक्के हैं ज्यादा तो इकन्नियाँ ही होंगी । सब आप जैसे महापुरुषों का दान है ।

लाला—है कोई पंद्रह बीस रुपये की रेजगारी !

संन्यासी—आज तक जो बचा है सो यही है धर्मप्राण ! गिने लेते हैं । इतने तो गायद निकल ही आएँगे ।अरे !

माचिस की डिविया थी एक, जाने कहाँ गिर गई ?

(एक एक रुपये की रेजगारी गिन कर रखने लगता है । इस बीच में दूसरे लोग बातचीत करते हैं)

लाला—(तत्परतापूर्वक) देखना यही कहीं महात्मा जी की माचिस की डिविया तो नहीं गिरी ?

शर्मा—(उसी तरह तत्परतापूर्वक) नहीं, इधर तो कही नहीं है ।

मुक—उधर बेंच के पीछे न गिरी हो। ठहरिए मैं देखना हूँ। ...

नहीं उधर तो नहीं है।

रोहित—माचिस की डिबिया हमारे पास है। हम ने वहाँ से उठाई थी।

स्त्री—दे दे उनकी माचिस की डिबिया। तूने क्यों उठाई?

[उन्ने छीनने लगती है। रोहित "हम नहीं देंगे" कहता हुआ गेना है।]

सन्यासी—रहने दो मेम साहब ! बच्चा है, खेलने दो। बैठिए सब लोग। इनने पैसे तो निकल ही आयेगे।

(‘आज’ ‘बैठिए’ आदि शब्दों के साथ सब लोग टैक्सी में बैठने हैं।)

स्त्री—तू मेरी गोद में बैठ रोहित ! ऐसे ! अब उनकी माचिस की डिबिया दे दे।

(उमसे छीनती है। रोहित फिर कुनमुनाता है।)

स्त्री—तुझ में कितनी बार कहा है कि किसी की चीज नहीं लेते। उनकी डिबिया दे। छोड़ (डिबिया छीन लेती है।

रोहित गेने लगता है।)

स्त्री—यह लीजिए जी, उन्हें उनकी माचिस की डिबिया दे दीजिए।

(टैक्सी स्टार्ट होती है।)

सन्यासी—रहने दो मेम साहब ! बच्चा खेल रहा है, खेलने दो।

स्त्री—नहीं जी, घर में खेलने के लिए उसकी अपनी चीजें नहीं हैं ? बच्चा दूसरे की चीज क्यों ले ! आप रखिए माचिस की डिबिया, उसे नहीं चाहिए।खामखाह जरा-सी चीज के लिए दूसरे का अहसान.....हूँ.....

(बच्चा मचलता रहता है। टैक्सी की आवाज क्रमशः दूर चली जाती है।)

श्री जगदीशचन्द्र माथुर—

भौर का तारा

[एक ऐतिहासिक एकांकी]

नाटक के पात्र

शेखर—उज्जयिनी का कवि

माधव—गुप्त-साम्राज्य में एक राज्यकर्मचारी
(शेखर का मित्र)

छाया—शेखर की प्रेयसी, बाद में पत्नी ।

स्थान

गुप्त-साम्राज्य की राजधानी उज्जयिनी में एक साधारण कवि का गृह ।

समय

सन् ४५५ ई० के आस-पास ।

पहला दृश्य

[कवि शेखर का गृह । सब वस्तुएँ अस्तव्यस्त । बाईं ओर एक तख्त पर मैली फटी हुई चादर बिछी है, उस पर चौकी भी रखी है और लेखनी इत्यादि भी । इधर-उधर भोजपत्र बिखरे हुए पड़े हैं । एक तिपाई भी है, जिस पर कुछ पात्र रखे हुए हैं ।

पीछे की ओर एक खिड़की है । बायाँ दरवाजा अन्दर जाने के लिए है और दायाँ बाहर आने के लिए । दीवारों में कई आले या ताख हैं, जिनमें दीपदान या कुछ और वस्तुएँ रखी हैं ।

शेखर कुछ गुनगुनाते हुए टहलता है या कभी-कभी तख्त पर बैठ कर कुछ लिखता जाता है। जान पड़ता है वह कविता बनाने में सलग्न है। तल्लीन मुद्रा। जो कुछ वह कहता है उसे लिखता भी जाता है।]

शेखर—“अँगुलियाँ आतुर तुरत पसार
खींचते नीले पट का छोर.....

(द्वारा कहता है, फिर लिखता है।)

टँका जिसमें जाने किस ओर.....
स्वर्ण-कण.....स्वर्ण-कण.....

[पूरा करने के प्रयास में तल्लीन है, इतने में बाहर से माधव का प्रवेश। सासारिकता का भाव और जानकारी उसके चेहरे से प्रकट है। द्वार के पास खड़ा होकर थोड़ी देर तक वह कवि की लीला देखता रहता है। उसके बाद—]

माधव—शेखर !

शेखर—(अभी सुना ही नहीं। एक पक्ति लिखकर) “स्वर्ण-कण प्रिय
को रहा निहार।”

माधव—शेखर !!

शेखर—(चौक कर) कौन ?ओह ! माधव !

(माधव की ओर उठ कर बढ़ता है।)

माधव—क्या कर रहे हो, शेखर ?

शेखर—यहाँ आग्री माधव, यहाँ, (उसके कंधे को पकड़ कर, तख्त पर बैठाता हुआ) यहाँ बैठो। (स्वयं खड़ा है) माधव, तुम ने भोर का तारा देखा है कभी ?

माधव—(मुस्कराते हुए) हाँ ! क्यों ?

शेखर—(बड़ी गम्भीरता-पूर्वक) कैसा अकेला-सा, एक टक देखता रहता है ? जानते हो क्यों ?नहीं जानते ! (तख्त

के दूसरे भाग पर बैठता हुआ) बात यह है कि एक बार राजनीबाला अपने प्रियतम प्रभात से मिलने चली, गहरे नीले कपड़े पहन कर, जिसमें सोने के तारे टँके थे। ज्यों ही निकट पहुँची, त्यों ही लाज की आँधी आई और बेचारी राजनी को उडा कर ले चली। (म्क कर) फिर क्या हुआ ?

माधव—(कुछ उद्योग के बाद) प्रभात अकेला रह गया ?

शेखर—नहीं। उसने अपनी अँगुलियाँ पसार कर उसके नीले पट का छोर खींच लिया—जानते हो, यह भोर का तारा है न, उसी छोर में टँका हुआ सोने का कण है, एकटक प्रियतम प्रभात को निहार रहा है। ... क्यो ?

माधव—बहुत ऊँची कल्पना है ! लिख चुके क्या ?

शेखर—अभी तो और लिखूंगा। बैठा ही था कि इनने में तुम आ गये—

माधव—(हँसते हुए) और तब तुम्हे ध्यान हुआ कि तुम धरती पर ही बैठे थे। आकाश में नहीं। (म्ककर) मुझे कोस तो नहीं रहे हो शेखर ?

शेखर—(भोलेपन से) क्यों ?

माधव—तुम्हारी परियों और तारों की दुनिया में मैं मनुष्यों की दुनिया लेकर आ गया।

शेखर—(सन्धेपन से) कभी-कभी तो मुझे तुम में भी कविता दीख पड़ती है ?

माधव—मुझ में ? (जोर से हँस कर) तुम अठखेलियाँ करना जानते हो ? (गम्भीर होते हुए) शेखर, कविता तो कोमल हृदयों की चीज है। मुझ-जैसे काम-काजी राजनीतिज्ञों और सैनिकों के तो छूने-भर से मुरझा

जायगी । हम लोगों के लिए तो दुनिया की और ही उलभने बहुत है ।

शेखर—माधव, तुमने कभी यह भी सोचा है कि इन उलभनों से बाहर निकलने का मार्ग भी हो सकता है ?

माधव—और हम लोग करते ही क्या है ? गन-दिन मनुष्यों की नई-नई उलभने मुलभाने का ही तो उद्योग करते रहते हैं ।

शेखर—यही तो नहीं करते । तुम राजनीतिज्ञ और मंत्री लोग बड़ी मजीदगी के साथ अमीरी-गरीबी, युद्ध और सन्धि की समस्याओं को हल करने का अभिनय करते हो, परन्तु मनुष्य को इन उलभनों के बाहर कभी नहीं लाते । कवि उसका प्रयत्न करते हैं परं तुम उन्हें पागल

माधव—कवि ? . . . (अवहेलना-पूर्वक) तुम उलभनों से बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते, तुम उन्हें भूलने का प्रयास करते हो । तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है, हम जागते रहते हैं और देखते हैं कि जीवन कर्त्तव्य है ।

शेखर—(भावुकता से) मुझे तो सौन्दर्य ही कर्त्तव्य जान पड़ता है । मुझे तो जहाँ सौन्दर्य दीख पड़ता है, वहाँ कविता दीख पड़ती है, वही जीवन दीख पड़ता है । (स्वर बदलकर) माधव, तुमने मस्त्राट् के भवन के पाम, राज-पथ के किनारे उस अंधी भिन्वमंगी को कभी देखा है ?

माधव—(मुस्कराहट गंवने हुए) हाँ !

शेखर—मैं उसे मद्रा भीख देता हूँ । जानते हो क्यों ?

माधव—क्यों ? (कुछ मोचने के बाद) दया मज्जन पुण्यों का भूषण है ।

शेखर—दया ? हूँ (ठहर कर) मैं तो उसे इसलिये भीख देता हूँ क्योंकि मुझे उसमें एक कविता, एक लय, एक व्यथा झलक पड़ती है । उसका गहरा झुर्रियोंदार चेहरा, उसके काँपते हुए हाथ, उसकी आँखों के वेवस गड्ढे (एक तरफ एकटक देखते हुए मानो इस मानसिक चित्र में खो गया हो) उसकी झुकी हुई कमर—माधव, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो किसी शिल्पी ने उसे इस ढाँचे में ढाला हो ।

माधव—(इस भाषण से उसका अच्छा खासा मनोरजन हो गया जान पड़ता है । खड़े होकर शेखर पर गरारत-भरी आँखें गड़ाते हुए) शेखर, टाट में रेशम का पैवन्द क्यों लगाते हो । ऐसी कविता तो तुम्हें किसी देवी की प्रशंसा में करनी चाहिए थी ।

शेखर—(सरल भाव से) किस देवी की ?

माधव—(अर्थपूर्ण स्वर में) यह तो उसके पुजारी से पूछो ।

शेखर—मैं तो नहीं जानता किसी पुजारी को ।

माधव—अपने को आज तक किसी ने जाना है, शेखर ? (हँस पड़ता है । शेखर कुछ समझ कर झेंपता-सा है ।).....

पागल..... । (गम्भीर होकर बैठते हुए) शेखर, सच बताओ तुम छाया को प्यार करते हो ?

शेखर—(मद गहरे स्वर में) कितनी बार पूछोगे ?

माधव—बहुत प्यार करते हो ?

शेखर—माधव, जीवन में मेरी दो ही तो साधनाएँ हैं, (तल्ल से उठकर खिड़की की ओर बढ़ता हुआ) छाया का प्यार और कविता ।

[खिड़की के सहारे दर्शकों की ओर मुँह करके खड़ा हो जाता है]

माधव—और छाया ?

शेखर—(वही गहरा स्वर) हम दोनों नदी के दो किनारे हैं जो एक दूसरे की ओर मुड़ते हैं पर मिल नहीं पाते ।

माधव—(उठ कर शेखर के कंधे पर हाथ रखते हुए) सुनो शेखर, नदी सूख भी तो सकती है ।

शेखर—नहीं माधव, उसके भाई देवदत्त से किसी तरह की आशा करना व्यर्थ है । मेरे लिये तो उसका हृदय सूखा हुआ है ।

माधव—क्यों ?

शेखर—तुम पूछते हो क्यों ? तुम तो सम्राट् स्कंदगुप्त के दरबारी हो । देवदत्त एक मन्त्री है । भला एक मन्त्री की बहन का एक मामूली कवि से क्या सम्बन्ध ?

माधव—मामूली कवि ! शेखर, तुम अपने को मामूली कवि समझते हो ?

शेखर—और क्या समझूँ ? राजकवि ?

माधव—मुनो शेखर, तुम्हें एक समाचार सुनाता हूँ ।

शेखर—समाचार ?

माधव—हाँ ! मैं कल रात को राज-भवन गया था ।

शेखर—इसमे तो कोई नई बात नहीं । तुम्हारा तो काम ही यह है !

माधव—नहीं, कल एक उत्सव था ! स्वयं सम्राट् ने कुछ लोगों को बुलाया था । गाने हुए, दावत हुई । एक युवती ने बहुत सुन्दर गीत सुनाया । सम्राट् तो उस गीत पर रीझ गए ।

शेखर—(उगता कर) आखिर तुम यह सब मुझे क्यों सुना रहे हो माधव ?

माधव—इस लिए कि सम्राट् ने उस गीत बनाने वाले का नाम पूछा। पता चला कि उसका नाम था—शेखर।

शेखर—(चौक कर) क्या ?

माधव—अभी और तो सुनो। उस युवती ने सम्राट् से कहा कि अगर आपको यह गाना पसन्द है तो इसके लिखने वाले कवि को अपने दरवार में बुलाइए। अब कल से वह कवि महाराजाधिराज सम्राट् स्कंदगुप्त विक्रमादित्य के दरवार में जायगा।

शेखर—मैं ?

माधव—(अभिनय करते हुए, झुक कर) श्रीमन्, क्या आप ही का नाम शेखर है ?

शेखर—मैं जाऊँगा सम्राट् के दरवार में ? माधव, सपना तो नहीं देख रहे हो ?

माधव—सपने तो तुम देखा करते हो,.....लेकिन अभी मेरा समाचार पूरा कहाँ हुआ है ?

शेखर—हाँ, वह युवती कौन है ?

माधव—अब यह भी बताना होगा ? तुम भी बुद्धू हो। क्या इसी बूते पर प्रेम करने चले थे ?

शेखर—ओह !छाया ! (माधव का हाथ पकड़ते हुए) तुम कितनेकितने अच्छे हो !

माधव—और सुनो।.....सम्राट् ने देवदत्त को आज्ञा दी है कि वे तक्षशिला जाकर वहाँ के क्षत्रप वीरभद्र के विद्रोह को दबाएँ। आर्य देवदत्त के साथ मैं भी जाऊँगा, उनका मंत्री बन कर। समझे ?

शेखर—(स्वप्न-से में) तो क्या सच ही छाया ने कहा ? सच ही ?

माधव—जेम्बर आठ दिन बाद आर्य देवदत्त और मैं तक्षशिला चल देंगे ।.....उसके बाद छाया कहाँ रहेगी ? भला बनाओ तो ?

शेखर—माधव ! (माधव हँस पड़ता है) इनना भाग्य ? इनना ? विश्वास नहीं होता ।

माधव—न करो विश्वास !लेकिन भलेमानस, छाया क्या इस कूटे में रहेगी । ये बिखरे हुए कागज, टूटी चटाई, फटे हुए वस्त्र । जेम्बर, लापरवाही की सीमा होती है ।

शेखर—मे कोर्ट इन बातों की परवाह करना हूँ ?

माधव—आर फिर ?

शेखर—मैं परवाह करता हूँ फूल की पखुडियों पर जगमगाती हुई ओस की (भावोद्रेक में) संध्या में सूर्य की किरणों को अपनी गोदी में सिमेटने वाले बादल के टुकड़ों की, सुबह को आकाश के कोने पर टिमटिमाने वाले तारे की—

माधव—एक चीज रह गई ।

शेखर—क्या ?

माधव—जिसे तुम दिन में वृक्षों के नीचे फैली देखते हो ।

(उठ कर गड़ा हो जाता है ।)

शेखर—वृक्षों के नीचे ?

माधव—जिसे तुम दर्पण में झलकती देखते हो ।

शेखर—दर्पण में ?

माधव—जिसे तुम अपने हृदय में हमेशा देखते हो ।

(निवृत्त आ गया है ।)

शेखर—(समझ कर, बच्चों की तरह) छाया !

माधव—(मुन्मत्त हो) छाया !

(पर्दा गिरता है ।)

दूसरा दृश्य

(उज्जयिनी में आर्य देवदत्त का भवन, जिसमें अब शेखर और छाया रहते हैं। कमरा सजा हुआ है और साफ़ है। दीवारों पर कुछ चित्र खिचे हुए हैं। कोने में धूपदान है। सामने तख्त पर चटाई और लिखने-पढ़ने का सामान है। बराबर में एक छोटी चौकी पर कुछ ग्रन्थ रखे हुए हैं। दूसरी ओर एक पीढ़ा है जिसके निकट मिट्टी की, किन्तु कलापूर्ण, एक अंगीठी रखी हुई है। दीवार के एक भाग पर एक अलगनी है जिस पर कुछ घोटियाँ टँगी हैं।)

छाया—सौन्दर्य की प्रतिमा, चांचल्य और उन्माद और गाम्भीर्य का जिसमें स्त्री-सुलभ समिश्रण है—गृहस्वामिनी होने के नाते कमरे की वस्तुएँ ठीक-ठीक स्थान पर सम्भाल कर रख रही है। साथ ही कुछ गुनगुनाती भी जाती है। जाड़ा होने के कारण तापने के लिए उसने अंगीठी में अग्नि प्रज्वलित कर दी है। कुछ देर बाद पीढ़े पर बैठ कर वह अंगीठी को ठीक करती है, उसकी पीठ द्वार की ओर है। अपने कार्य और गान में इतनी सलग्न है कि उसे बाहर पैरों की आवाज़ सुनाई नहीं देती।)

गीत

प्यार की है क्या यह पहचान ?

चाँदनी का पाकर नव स्पर्श, चमक उठते पत्ते नादान
पवन को परस सलिल की लहर, नृत्य में हो जाती लयमान
सूर्य का सुन कोमल पद-चाप, फूट उठता चिड़ियों का गान
तुम्हारी तो प्रिय केवल याद, जगाती मेरे सोये प्राण

प्यार की है क्या यह पहचान ?

(धीरे से शेखर का प्रवेश। कन्धे और कमर पर ऊनी दुशाला है, बगल में ग्रन्थ। गले में फूलों की माला है। द्वार पर चुपचाप खड़ा होकर मुस्कराते हुए छाया का गीत सुनता है।)

शेखर—(थोड़ी देर बाद, धीरे से) छाया ! (छाया नहीं सुन पाती है । गाना जारी है, फिर कुछ समय बाद) छाया !!

छाया—(चौक कर खड़ी हो जाती है । एक साथ मुख फेर कर) ओह !

शेखर—(तख्त की ओर बढ़ता हुआ) छाया, तुम्हें एक कहानी मालूम है ?

छाया—(उत्सुकता-पूर्वक) कौन सी ?

शेखर—(छोटी चौकी पर पहले तो अपनी बगल वाला ग्रन्थ रखता है । और फिर उस पर दुशाला रखते हुए) एक बहुत सुन्दर-सी ।

छाया—सुने, कैसी कहानी है ।

शेखर—(बैठ कर) एक राजा के यहाँ एक कवि रहता था । युवक और भावुक । राजभवन में सब लोग उसे प्यार करते थे, राजा तो उस पर निछावर था । रोज सुबह राजा उसके मुँह से नई कविता सुनता, नई और सुन्दर कविता ।

छाया—हुँ ।

[पीढ़े पर बैठ जाती है, चिबुक को हथेली पर टेकती है ।]

शेखर—परन्तु उसमें एक बुराई थी ।

छाया—क्या ?

शेखर—वह अपनी कविता केवल सुबह के समय सुनाता था । यदि राजा उससे पूछता कि तुम दोपहर या सन्ध्या को अपनी कविता क्यों नहीं सुनाते तो वह उत्तर देता, "मैं केवल रात के तीसरे पहर में कविता लिख सकता हूँ ।"

छाया—राजा उससे रुष्ट नहीं हुआ ?

शेखर—नहीं । उसने सोचा कवि के घर चलकर देखा जाय कि इसमें रहस्य क्या है । रात का तीसरा पहर होते ही राजा

वेश बदल कर कवि के घर के पास खिड़की के नीचे बैठ गया ।

छाया—उसके बाद ।

शेखर—उसके बाद राजा ने देखा कि कवि लेखनी लेकर तैयार बैठ गया । थोड़ी देर में कहीं से बहुत मधुर, बहुत सुरीला स्वर राजा के कान में पड़ा । राजा भूमने लगा और कवि की लेखनी आप-से-आप चलने लगी ।

छाया—फिर ?

शेखर—फिर क्या ? राजा महल को लौट कर आया और उसके बाद उसने कवि से कभी यह प्रश्न नहीं पूछा कि वह सुबह ही क्यों कविता सुनाता था ! भला बताओ तो क्यों नहीं पूछा ?

छाया—बताऊँ ?

शेखर—हाँ ।

छाया—राजा को यह मालूम हो गया कि उस गायिका के स्वर में ही कवि की कविता थी । और बताऊँ ?

[खड़ी हो जाती है ।]

शेखर—(मुस्कराते हुए) छाया, तुम.....

छाया—(टोक कर, शीघ्रता और चंचलता के साथ) वह गायिका और कोई नहीं उस कवि की पत्नी थी । और बताऊँ ? उस कवि को कहानी सुनाने का बड़ा शौक था, झूठी कहानी । और बताऊँ ? उस कवि के बाल लम्बे थे, कपड़े ढीले-ढाले, गले में उसके फूलों की माला थी, माथे पर.....

[इस बीच में शेखर की मुस्कराहट हल्की हँसी में परिणत हो गई है, यहाँ तक कि इन शब्दों तक पहुँचते-पहुँचते दोनों जोर से हँस पड़ते हैं ।]

शेखर—(थोड़ी देर बाद गम्भीर होते हुए) लेकिन छाया, तुम्ही बताओ तुम्हारे गान, तुम्हारी प्रेरणा, तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी कविता क्या होती ? तुम तो मेरी कविता हो !

छाया—(बड़े गम्भीर, उलाहना-भरे स्वर में) प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक कविता है ।

शेखर—क्या मतलब तुम्हारा ?

छाया—कविता तुम्हारे सूने दिलों में संगीत भरती है; स्त्री भी तुम्हारे ऊबे हुए मन को बहलाती है । पुरुष जब जीवन की सूखी चट्टानों पर चढ़ता-चढ़ता थक जाता है तब सोचता है “चलो थोड़ा मन-बहलाव ही कर लें ।” स्त्री पर अपना सारा प्यार अपने सारे अरमान निछावर कर देता है, मानो दुनिया में और कुछ हो ही न । और उसके बाद जब चाँदनी बीत जाती है, जब कविता भी नीरव हो जाती है, तब पुरुष को चट्टाने फिर बुलाती है और वह ऐसे भागता है मानो पिजड़े से छूटा हुआ पंछी ! और स्त्री के लिए फिर वही अन्धेरा, फिर वही सूनापन ।

शेखर—(मन्द स्वर में) छाया, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो ।

छाया—क्या एक दिन तुम मुझे भी ऐसे छोड़ कर नहीं चले जाओगे ?

शेखर—लेकिन छाया, मैं तुम्हें छोड़ कर कहाँ जा सकता हूँ ?

छाया—उँहूँ, मैं नहीं मान सकती ।

शेखर—सुनो तो, मेरे लिए तो जीवन में ऐसी सूखी चट्टाने थोड़े ही हैं । मेरी कविता ही मेरी हरी-भरी वाटिका है । मैं उसे प्यार करता हूँ, क्योंकि मुझे उसमें सौन्दर्य दीखता है । मैं तुम्हें प्यार करता हूँ क्योंकि मुझे तुम्हारे हृदय में

सौन्दर्य दीखता है। जिस रोज मैं तुमसे दूर हो जाऊँगा, उस रोज मैं सौन्दर्य से दूर हो जाऊँगा। अपनी कविता से दूर हो जाऊँगा। (कुछ रुक कर) मेरी कविता मर जायेगी।

छाया—नहीं शेखर, मैं मर जाऊँगी, किन्तु तुम्हारी कविता रहेगी, बहुत दिन रहेगी।

शेखर—मेरी कविता (कुछ देर बाद) छाया, आज मैं तुम्हें एक बड़ी विशेष बात बताने वाला हूँ, एक ऐसा भेद जो अब तक मैंने तुमसे छिपा रखा था।

छाया—रहने दो, तुम सदा ऐसे भेद और कहानियाँ सुनाया करते हो।

शेखर—नहीं। अच्छा, तनिक उस दुशाले को उठाओ। (छाया उठाती है) उसके नीचे कुछ है। (छाया उस ग्रन्थ को हाथ में ले लेती है) उसे खोलो क्या है ?

छाया—(आश्चर्यान्वित होकर) ओह, (ज्यों-ज्यों छाया उसके पन्ने उलटती जाती है, शेखर की प्रसन्नता बढ़ती जाती है) 'भोर का तारा' उफ़फ़ोह ! यह तुमने कब लिखा ? मुझ से छिपा कर ?

शेखर—(हँसते हुए। विजय का-सा भाव) छाया, तुम्हें याद है उस दिन की, जब माधव के साथ मैं तुम्हारे भाई देवदत्त से मिलने इसी भवन में आया था ?

छाया—(शेखर की ओर थोड़ी देर देख कर) उस दिन को कैसे भूल सकती हूँ, शेखर ? उसी दिन तो भैया को तक्षशिला जाने की आज्ञा मिली थी, उसी दिन उन्होंने तुम्हें और मुझे माता जी का वह पत्र दिखाया था जिसने हम दोनों को सर्वदा के लिए बाँध दिया।

शेखर—हाँ, छाया, उसी दिन मैंने इस महाकाव्य को लिखना आरम्भ किया था। (गहरे स्वर में) आज यह समाप्त हो गया।

छाया—शेखर, यह हमारे प्रेम की अमर स्मृति है।

शेखर—उसे यहाँ लाओ। (हाथ में लेकर चाव से खोलता हुआ) 'भोर का तारा'। छाया, यह काव्य बड़ी लगन का फल है। कल मैं इसे सम्राट् की सेवा में ले जाऊँगा। और फिर, फिर जब मैं उस सभा में इसे सुनाना आरम्भ करूँगा, तब, तब, सारी उज्जयिनी की आँखें मेरे ऊपर होगी। महाकाव्य, महाकाव्य! उस समय सम्राट् गद्गद हो जायेगे और मैं कवियों का सिरमौर हो जाऊँगा। छाया, बरसों बाद दुनिया पढ़ेगी कविकुल-शिरोमणि शेखरकृत 'भोर का तारा'—हा, हा, हा, !—

[विभोर हो जाता है। छाया उसकी ओर एक टक देख रही है। सहसा उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखा खिंच जाती है। शेखर हँस रहा है।]

छाया—शेखर ! (वह हँसे जा रहा है।) शेखर !

[शेखर की दृष्टि उस पर पड़ती है।]

शेखर—(सहसा चुप होकर) क्यों छाया, क्या हुआ तुम को ?

छाया—(चिन्तित स्वर में) शेखर !

[चुप हो जाती है]

शेखर—कहो।

छाया—शेखर, तुम इसे सम्हाल कर रखोगे न ?

शेखर—वस इतनी ही सी बात ?

छाया—मुझे डर लगता है कि...कि...कहीं यह नष्ट न हो जाय, कोई इसे चुरा न ले जाय, और फिर तुम—

शेखर—हा, हा, हा, पगली ! ऐसा क्यों होने लगा ? सोचने से ही डर गई ? छाया, छाया, तेरे लिए तो आज प्रसन्न होने का दिन है, बहुत प्रसन्न ! ... इधर देखो छाया, हम लोग कितने सुखी है ? और तुम ? जानती हो, तुम कौन हो ? तुम हो तक्षशिला के अधिपति देवदत्त की बहन और उज्जयिनी के सब से बड़े कवि शेखर की पत्नी ! ... तक्षशिला का अधिपति और उज्जयिनी का कवि । हँ, हँ, हँ । ... क्यों छाया ?

छाया—(मद स्वर में) तुम सच कहते हो, शेखर, हम लोग बहुत सुखी हैं

शेखर—(मगनावस्था में) बहुत सुखी !

[सहसा बाहर कोलाहल । घोड़े की टाप की आवाज । शेखर और छाया छिटक कर चैतन्य खड़े हो जाते हैं । शेखर द्वार की ओर बढ़ता है ।]

शेखर—कौन है ?

[सहसा माधव का प्रवेश । थकित और श्रमित, शस्त्रों से सुसज्जित । पसीने से नहा रहा है । चेहरे पर भय और चिन्ता के चिह्न हैं ।]

शेखर और छाया—माधव !

शेखर—माधव, तुम यहाँ कहाँ ?

माधव—(दोनों पर दृष्टि फेंकता हुआ) शेखर, छाया ! (फिर उस कमरे पर डरती-सी आँखें डालता है मानो उस सुरम्य घोंसले को नष्ट करने से भय खाता हो । कुछ देर बाद बड़े प्रयत्न और कष्ट के साथ बोलता है ।) मैं तुम दोनों से भीख माँगने आया हूँ !

[छाया और शेखर के आश्चर्य का ठिकाना नहीं है ।]

छाया—भीख माँगने, तक्षशिला से ?

शेखर—तक्षशिला से ? माधव, क्या बात है ?

माधव—(धीरे-धीरे मजबूती के साथ बोलना प्रारम्भ करता है, परन्तु ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों स्वर में भावुकता आती जाती है।) हाँ मैं तक्षशिला से ही आ रहा हूँ। यहाँ तक कैसे आ गया, यह मैं नहीं जानता। हाँ, यह जानता हूँ कि आज गुप्त-साम्राज्य सकट में है और हमें घर-घर भीख माँगनी पड़ेगी।

शेखर—गुप्त- साम्राज्य सकट में, क्या कह रहे हो माधव ?

माधव—(सजीदगी के साथ) शेखर, पश्चिमोत्तर सीमा पर आग लग चुकी है हूणों का सरदार तोरमाण भारतवर्ष पर चढ़ आया है,

छाया—(भयाक्रान्त होकर) तोरमाण !!

माधव—उसने सिन्ध नदी को पार कर लिया है, उसने आम्भी राज्य को नष्ट कर दिया है। उसकी सेना तक्षशिला को पैरों तले रौंद रही है—

छाया—(सहसा माधव के निकट जाकर, भय से कातर हो उसकी भुजा पकड़ती हुई) तक्षशिला ?

माधव—(उसी स्वर में) सारा पचनद आज उसके भय से काँप रहा है। एक के बाद एक गाँव जल रहे हैं। हत्याएँ हो रही हैं, अत्याचार हो रहा है। शीघ्र ही सारा आर्यावर्त पीड़ितों के हाहाकार से गूँजने लगेगा। शेखर, छाया, मैं तुमसे भीख माँगता हूँ—नई भीख माँगता हूँ—सम्राट् स्कन्दगुप्त की, साम्राज्य की, देश की, इस संकट में मदद करो। (बाहर भारी कोलाहल। शेखर और छाया जड़वत् खड़े हैं।) देखो बाहर जनता उमड़ रही है। शेखर, तुम्हारी वाणी में ओज है, तुम्हारे स्वर में प्रभाव। तुम अपने शब्दों के बल पर सोई हुई आत्माओं को जगा सकते

हो, युवकों में जान फूंक सकते हो। (शेखर सुने जा रहा है। चेहरे पर भावों का आवेग। मस्तक पर हाथ रखता है।) आज साम्राज्य को सैनिकों की आवश्यकता है। शेखर, ओजमयी कविता के द्वारा तुम गाँव-गाँव में जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारों और लाखों भुजाएँ अपने सम्राट् और अपने देश की रक्षा के लिए शस्त्र धारण कर लें। (कुछ रुक कर शेखर के चेहरे की ओर देखता है।) उसकी मुद्रा बदल रही है, जैसे कोई भीषण उद्योग कर रहा है।) कवि, देश तुम से यह बलिदान माँगता है।

छाया—(अत्यन्त दर्द-भरे करुण स्वर में) माधव, माधव !!

माधव—मुड़कर छाया की ओर कुछ देर तक देखता है, फिर थोड़ी देर बाद) छाया, उन्होंने कहा था कि मेरे प्राण क्या चीज है, इसमें तो सहस्रों मिट गए और सहस्रों को मिटना है।”

शेखर—(मानो नींद से जागा हो) किसने ?

माधव—आर्य देवदत्त ने, अन्तिम समय !

छाया—(जैसे विजली गिरी हो) माधव, माधव, तो क्या भया...

माधव—उन्होंने वीरगति पाई है, छाया ! (छाया पृथ्वी पर घुटनों पर गिर जाती है। चेहरे को हाथों से ढँक लिया है। इस बीच में माधव कहे जाता है। शेखर एक दो बार घूमता है। उसके मुख से प्रकट होता है मानो डूबते को सहारा मिलने वाला है।) तक्षशिला से चालीस मील दूर विद्रोही वीरभद्र की खोज में वे हूणों के दल के निकट जा पहुँचे। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि वीरभद्र हूणों से मिल गया है। उनके बीस सैनिक आगे हूणों में फँसे हुए थे। वे तक्षशिला लौट सकते थे और अपने प्राण बचा सकते थे। परन्तु एक सच्चे सेनापति की भाँति उन्होंने अपने सैनिकों के

लिए अपने प्राण संकट में डाल दिए और मुझे तक्षशिला और पाटलिपुत्र को चेतावनी देने के लिए भेजा। मैं आज.....

[सहसा रुक जाता है, क्योंकि उसकी दृष्टि शेखर पर जा पड़ती है। शेखर चौकी के पास खड़ा है उसके चेहरे पर दृढ़ता और विजय का भाव है। बाहर कोलाहल कम है। शेखर अपना हाथ बढ़ा कर अपने ग्रन्थ 'भोर का तारा' को उठाता है। इसी समय माधव की दृष्टि उस पर पड़ती है। शेखर पुस्तक को कुछ देर चाव से, विछुड़न से, प्रेम से देखता है। उसके बाद आगे बढ़ कर अग्रीठी के निकट जाकर उसमें जलती हुई अग्नि को देखता है और धीरे-धीरे उस पुस्तक को फाड़ता है। इस आवाज को सुन कर छाया अपना मुख ऊपर को करती है।]

छाया—(उसे फाड़ते हुए देखकर) शेखर !

[लेकिन शेखर ने उसे अग्नि में डाल दिया है। लपटे उठती हैं। छाया गिर-गिर पड़ती है। शेखर लपटों की तरफ देखता है, फिर छाया की ओर दृष्टि-पात करता है ; एक सूखी हँसी के बाद बाहर चल देता है। कोलाहल कम होने के कारण उसके पैरों की आवाज थोड़ी देर तक सुनाई देती है। माधव द्वार की ओर बढ़ता है।]

छाया—(अत्यन्त पीड़ित स्वर में) माधव तुमने मेरा प्रभात नष्ट कर दिया।

[माधव उसके ये शब्द सुन कर बाहर जाता-जाता रुक जाता है। मुड़कर छाया की ओर देखता है और पीछे की खिड़की के निकट जाकर उसे खोल देता है, इससे बाहर का कोलाहल स्पष्ट सुनाई देता है। शेखर और उसके साथ पूरे जनसमूह के गाने का स्वर सुन पड़ता है—

अभय जाग जनता जनार्दन !

कहाँ है भयंकर तरंगें, कहाँ सो रहा क्रुद्ध गर्जन ?

महोदधि तनिक तो उमड़ नू, बुलाना तुझे मैं प्रभंजन ।
अभय जाग जनता जनार्दन !

[शेखर का स्वर तीव्र है माधव खिड़की को वन्द कर देता है ।
पुनः गान्ति । इसके बाद मद परन्तु दृढ़ स्वर में बोलता है ।]

माधव—छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नहीं किया । प्रभात तो
अब होगा । शेखर अब तक भोर का तारा था । अब
वह प्रभात का सूर्य होगा ।

(छाया धीरे-धीरे अपना मस्तक उठाती है ।)

[पर्दा गिरता है ।]

परिशिष्टिका

अनुटिप्पणी

(क) लेखक-परिचय

(ख) अर्थावली

(क) लेखक-परिचय

(१) डा० रामकुमार वर्मा

वर्मा जी का जन्म १५ नवम्बर सन् १९०५ को मध्यप्रदेश के सागर जिला मे हुआ । इनके पिता श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद एक ऊँचे सरकारी पद पर प्रतिष्ठित थे । इन्होंने प्रयाग-विश्वविद्यालय से हिन्दी एम. ए. परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की और फिर इसी विश्वविद्यालय मे हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हो गए । “हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास” लिखने पर इन्हे नागपुर विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई । आजकल वर्मा जी प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर के पद को सुशोभित कर रहे हैं ।

आप एक सिद्धहस्त एकांकीकार, सफल कवि और विद्वान् आलोचक हैं । हिन्दी मे आधुनिक ढंग के सफल एकांकी सब से पहले आपने ही लिखे । आप का प्रथम एकांकी “बादल की मृत्यु” सन् १९३० मे प्रकाशित हुआ । तब से वर्मा जी के कई एकांकी-संग्रह छप चुके हैं जैसे पृथ्वीराज की आँखे, रेशमी टाई, चारुमित्रा, सप्तकिरण और दीपदान । आपके अतीव लोक-प्रिय एकांकियों मे ‘एक तोला अफीम की कीमत’ औरंगजेब की आखिरी रात, कलक-रेखा, रात का रहस्य, फ्लैट हैट, आदि गिने जाते हैं । आपने सभी प्रकार के एकांकी लिखे हैं—ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यंग्यात्मक एवं मनोवैज्ञानिक । नाटकीय दृष्टि से उन्हे सभी मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । क्योंकि वे कवि भी है, अतः उनकी भाषा मे अलंकारों का सौरभ भरा रहता है । काव्य-सुलभ रस-सामग्री तो उनके नाटकों का प्राण है । उनके नाटकों मे सवाद भी सर्वथा स्वाभाविक और चुस्त होते हैं ।

आपको रंगमंच का पूरा अनुभव है । अतः अभिनय की दृष्टि से

आपके सभी एकांकी सफल सिद्ध हुए आपके बहुतेरे एकांकी आकाशवाणी से भी प्रसारित हो चुके हैं।

(२) सेठ गोविन्ददास

सेठ साहिब जवलपुर निवासी हैं। आप एक प्रसिद्ध राजनीतिक और यशस्वी साहित्यिक हैं। राजनैतिक जीवन की हलचल में रहते हुए भी आपने हिन्दी-साहित्य की बहुत सेवा की है। आजकल आप भारत की लोकसभा के सदस्य हैं और उस रूप में व्यस्त रह कर भी निरन्तर कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं। राजनैतिक आन्दोलन के दिनों में सेठ जी ने कई बार जेलयात्रा की है और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं। हिन्दी के प्रचार के लिए आपने बहुत कार्य किया है। और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा घोषित कराने में भी आपका बड़ा हाथ है।

आपने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के एकांकी लिखे हैं। आपके एकांकियों का विषय प्रायः भद्र लोगों के जीवन की कोई समस्या होती है। भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा को बनाये रखना तथा सुन्दर का परित्याग किये बिना सत्य और शिव की साधना करना इनका ध्येय रहता है। इनके विचारों में गान्धीवाद की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

आप ने बहुत से नाटक जेल-जीवन में ही लिखे। कथानक में कौतूहल को बनाये रखने में आपको बड़ी सफलता मिली है। कथानक को विविध दृश्यों में विभक्त कर देना, नाटक के प्रारम्भ में 'प्रवेश' और अन्त में 'उपसंहार' रखना इनकी शैली की विशेषताएँ हैं। एकांकी क्षेत्र में इन्होंने अन्य शैलियों का भी प्रयोग किया है जैसे कि एकपात्री नाटक। ऐसे नाटकों में सेठ जी की कृति 'शाप और वीर' सब से प्रसिद्ध है। आपके कई एकांकी संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जैसे सप्त-रश्मि, एकादशी, अष्टदल, चतुष्पथ आदि। आपके उत्कृष्ट श्रेणी के कुछेक एकांकी ये हैं— विश्व-प्रेम, कर्तव्य, सेवापथ, सच्चाधर्म, प्रायश्चित्त, भय का भूत, व्यवहार।

(३) श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एक ख्याति-प्राप्त एकाकीकार, कहानी-लेखक, कवि तथा उपन्यासकार है। इनका जन्म पंजाब के जालन्धर नगर में सन् १९१० में हुआ। लाहौर से इन्होंने एल-एल० बी० परीक्षा पास की; परन्तु वकालत में इनका मन नहीं लगा। पहले दिनों में ये उर्दु में कविता, कहानी आदि लिखते रहे और उसमें प्रसिद्धि भी प्राप्त की। परन्तु आगे चल कर सन् १९३५ में इन्होंने हिन्दी-क्षेत्र में प्रवेश किया और अपनी प्रतिभा द्वारा यहाँ पर भी अपना विशेष स्थान बना लिया। ये हँसमुख स्वभाव वाले एवं आजाद तबीयत के सज्जन हैं। इन्होंने कुछ दिन दिल्ली रेडियो की नौकरी की, फिर बम्बई में फिल्मिस्तान के साथ रहे, किन्तु मन कहीं भी न टिका। आजकल ये इलाहाबाद में रह कर अपनी रचनाओं का स्वयं प्रकाशन कर रहे हैं।

इनके नाटकों में पंजाब के मध्यवर्ग के व्यस्त जीवन का चित्रण है। ये समस्या को छू कर उसे सजीव बना देते हैं। इनके पात्र सजीव और जीवन के सुख दुःख में भाग लेने वाले होते हैं। अश्क जी समस्या का हल चाहे न दे, किन्तु स्थिति ऐसी बना अवश्य देते हैं कि पाठक स्वयं समस्या का हल खोजने में प्रयत्न-शील हो जाता है। अश्क जी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इनके नाटक बिल्कुल जीवन के घरातल से उभरते हैं। ये प्रतिदिन के जीवन-क्षेत्र से अपने नाटकों के पात्रों तथा कथानकों का चुनाव करते हैं। हास्य और व्यंग्य का पुट भी इनके नाटकों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। रंगमंच की दृष्टि से भी आपके एकाकी बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।

आपकी ख्याति-प्राप्त रचनाएँ ये हैं —

उपन्यास—गिरती दीवारे, सितारों के खेल, चेतन आदि।

कहानी संग्रह—जुदाई की शाम का गीत, पिजरा, बैंगन का पौदा।

काव्य—दीप जलेगा, वरगद की वेटी, चाँदनी रात और अजगर।

एकांकी-संग्रह—पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, देवताओं की छाया में,
पक्का गाना ।

नाटक—जय-पराजय, पैतरे, स्वर्ग की झलक ।

(४) श्री विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर हिन्दी के मान्य कथाकार और एकांकी-लेखक हैं। इनका जन्म २१ जून सन् १९१२ को हुआ। बी. ए. तथा प्रभाकर परीक्षाएँ पास कर लेने के बाद ये हिन्दी-प्रचार के काम में जुट गए। पंजाब के जिला हिसार में इन्होंने हिन्दी-प्रचार के कार्य को बहुत आगे बढ़ाया और हिन्दी-साहित्य-मण्डल दिल्ली के सभापति भी चुने गये। ये प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की कार्यकारिणी के तथा प्रगतिशील लेखक-संघ के भी सदस्य हैं। 'इण्डिया जर्नल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स' के साथ भी इनका सम्बन्ध है। आजकल ये दिल्ली में रह कर राष्ट्रभाषा की भरोसा सेवा कर रहे हैं।

इनकी कहानियाँ और एकांकी हिन्दी-साहित्य में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। ये उन लेखकों में हैं जो लेखन-व्यवसाय का आश्रय लेकर आर्थिक संकटों का सहर्ष आवाहन करते हैं तथा निरन्तर अभाव में पिसते रह कर भी अपने व्यय के प्रति सच्चे रहते हैं। इनके लिए साहित्य-सृजन सेवा या विनोद न होकर एक साधना है। इनकी साधना एक-निष्ठ है, जिसमें नेदा का दम्भ या विनोद का हल्कापन नहीं है। यही कारण है कि वे अपने मार्ग पर विश्वास के साथ आगे बढ़ते जा रहे हैं।

इन्होंने जीवन की मार्मिक-विवेचना-भरे कई प्रकार के एकांकी लिखे हैं जैसे—रेडियो नाटक, रूपक तथा स्टेज नाटक। इनके नाटकों में मानव-मन की क्रिया-प्रतिक्रिया का सुन्दर चित्र मिलता है। इन पर भावुकता के साथ आदर्शवाद की गहरी छाप है। इनकी सभी कृतियों में स्वाभाविकता

मानवता की झलक पाई जाती है। कभी-कभी प्रभाकर जी तीखे व्यंग्य द्वारा समाज की वर्तमान अवस्था को भी नगा कर देते हैं। इनके नाटकों में बाह्य द्वेष-वृत्ति पर प्रेम और सद्भावना की विजय है। मनोवैज्ञानिक नाटको में इन्होंने मन की चेतना तथा उपचेतना वृत्तियों का अच्छा विश्लेषण किया है। मानव-मन के रहस्योद्घाटन में प्रभाकर जी सिद्धहस्त हैं।

आपकी निम्न-लिखित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं :—

उपन्यास—जीवन-पराग, ढलती रात।

नाटक—माँ का बेटा, स्वाधीनता संग्राम, वीरप्रताप।

एकांकी-संग्रह—‘इन्सान’ और ‘क्या वह दोषी था?’

कहानीसंग्रह—आदि और अन्त, रहमान का बेटा!

(५) श्री हरिकृष्ण ‘प्रेमी’

श्री हरिकृष्ण प्रेमी जी एक आदर-प्राप्त कवि और सुविख्यात नाटक-कार हैं। आपका जन्म विक्रमी संवत् १९६५ में ग्वालियर राज्य के गुना नामक कस्बे में हुआ। इनको राष्ट्रीय विचार सर्वप्रथम घर से ही मिले। इनके पिता श्री बालमुकुन्द जी तथा बड़े भाई श्री गोपालकृष्ण दोनों ही देश-सेवा में लगे रहने वाले महानुभाव थे। बाद में पं० माखन-लाल चतुर्वेदी जी के सान्निध्य में प्रेमी जी का देश-प्रेम और भी प्रबल हो उठा और उन्होंने ‘स्वर्ण-विहान’ नामक काव्य-नाटिका लिख कर देश में जागृति लाने का प्रयास किया। परन्तु उस समय की विदेशी भारत-सरकार ने तुरन्त ही उस पुस्तक को जब्त कर लिया। इस प्रेरणा से प्रेमी जी की काव्य-धारा ऐसी बदली कि उन्होंने ‘अग्निगान’ में विद्रोह का शक फूँका और पीड़ितों एवं पददलितों को क्रान्ति का मारु राग सुनाया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद प्रेमी जी की काव्य-धारा ने पलटा खाया और अब ये ससार की सुव्यवस्था के लिए क्रान्ति के स्थान पर शान्ति को अधिक उपयोगी मानने लगे हैं।

बैटवारे से पहले प्रेमी जी का कार्य-क्षेत्र लाहौर रहा। बाद में ये इन्दौर चले गए। कुछ समय आप ऑल-इण्डिया-रेडियो के जालन्धर स्टेशन में हिन्दी-कार्यक्रम तैयार करने वाले अधिकारी भी रहे हैं। आज-कल आप बम्बई में स्वतन्त्र लेखन कर रहे हैं।

साहित्य-जगत् में कवि प्रेमी की अपेक्षा नाटककार प्रेमी ने अधिक आदर प्राप्त किया है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल जी ने तो ऐतिहासिक नाटको की परम्परा में प्रसाद जी के बाद प्रेमी जी का ही नाम लिया है। आपने राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत कई उच्चकोटि के नाटक लिखे हैं। आपके नाटको में ऐतिहासिक घटनाओं का बाहुल्य रहता है, परन्तु इनमें कल्पना और इतिहास दोनों ही का उचित निर्वहण हुआ है।

एकांकी-क्षेत्र में भी आपने काफी मान पाया है। आपके एकांकियों का एक संग्रह 'मन्दिर' नाम से सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद आपने और भी कई एकांकी लिखे हैं। आपके एकांकियों में घटना तीर की तरह तेजी से नहीं बढ़ती, उसमें विकास का क्रम रहता है और वातावरण का पूरा ध्यान रखा जाता है। प्रेमी जी ने अपने नाटको में गीतों का भी पर्याप्त प्रयोग किया है। अभिनय की दृष्टि से आप के सभी एकांकी रंगमंच पर सफलता प्राप्त कर चुके हैं।

आपके नाटको में 'पाताल-विजय', 'रक्षाबन्धन', 'प्रतिशोध', 'आहुति' 'विषपान' और 'छाया' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(६) श्री मोहन 'राकेश'

इनका जन्म ८ जनवरी सन् १९२५ को अमृतसर में हुआ। इनके पिता वकील होते हुए भी बहुत साहित्यानुरागी थे। अतः उन्हें बचपन में ही घर में पर्याप्त साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ। सोलह वर्ष की अवस्था में पिता का देहांत हो गया और तब से ही जीवन में संघर्ष प्रारम्भ हुआ। आत्म-निर्भर रह कर इन्होंने एम० ए० तक की शिक्षा पूरी की और यूनिवर्सिटी से छात्रवृत्ति (स्कॉलरशिप) प्राप्त की। परन्तु विभाजन हो जाने से जीवन फिर से विमृश्रल हो गया। जीवन का संघर्ष

नये सिरे से प्रारम्भ हुआ। पाँच छ वर्ष बम्बई, दिल्ली और शिमला में बिताने के बाद श्री राकेश जी डी ए वी कालिज जालन्धर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए और वहाँ चार वर्ष तक कार्य करने के अनन्तर वहाँ से भी अलग हो गये। कुछ समय “सारिका” हिन्दी मासिक पत्रिका का सम्पादन करने के अनन्तर अब आप इलाहाबाद में स्वतंत्र लेखन (फ्री लांसिंग) कर रहे हैं।

जीवन में इन्हे स्थिति की अपेक्षा गति से ही अधिक प्यार रहा है, अतः निरन्तर घूमते रहना इन्हे बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए सन् १९५२ में ये शिमला में अपनी नौकरी से त्याग-पत्र देकर मालावार तट की ओर घूमने के लिए निकल गये। गोआ से कन्याकुमारी तक की इस यात्रा का विवरण ‘आखिरी चट्टान तक’ नामक इनकी पुस्तक में प्रकाशित हुआ था।

कहानियाँ और नाटक लिखने में इनकी विशेष अभिरुचि रही है। समकालीन जीवन के यथार्थ एवं विभिन्न पहलुओं को लेकर इन्होंने कई रचनाएँ लिखी हैं। इनकी कहानियों के दो संग्रह ‘इन्सान के खँडहर’ तथा ‘नये बादल’ प्रकाशित हो चुके हैं और तीसरा संग्रह ‘जानवर और जानवर’ अभी छपा है। इनके एकाकियों का एक संग्रह ‘सत्य और कल्पना’ पहले प्रकाशित हुआ था। एक और संग्रह अभी प्रकाशित हुआ है।

वर्षों में इनका एमेचर रगमच के साथ निजी सम्बन्ध रहा है और रगमच से ही नाटक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय संस्कृत-परिषद् के तत्त्वावधान में इन्होंने दो संस्कृत नाटकों का निर्देशन किया था। उसके बाद बम्बई, शिमला और जालन्धर में ये कई हिन्दी नाटकों को रगमच पर प्रस्तुत कर चुके हैं। इनके अपने लिखे हुए कितने ही एकाकी रगमच पर विभिन्न स्थानों पर खेले जा चुके हैं और आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं।

अर्थावली

कलंक-रेखा	वंशानुगत=वंशों से चले आ रहे ।
विह्वल स्वर में=घबराई हुई	भावुक=भावनाओं के वश में
आवाज में ।	हुआ हुआ ।
अप्रतिभ=प्रतिभाशून्य, बुद्धि-	क्षत-विक्षत=घायल ।
रहित ।	धूमकेतु=पुच्छल तारा ।
देव-प्रतिमा=देवमूर्ति ।	अमंगल=अशुभ बात ।
एकलिंग=भगवान् शिव शंकर ।	आशंका=डर, भय ।
अस्फुट=जो स्पष्ट न हो ।	सतष्ण=प्यासे ।
वातावरण=वायु-मण्डल ।	सुसज्जित करके=भली प्रकार
साधना=सिद्धि प्राप्त करने की	तैयार करके ।
क्रिया ।	कक्ष=कमरा ।
श्री=लक्ष्मी, शोभा ।	स्नानागार=स्नान का कमरा ।
पीत आभा=पीली चमक ।	ज्वलन्त=उज्ज्वल ।
हरिद्रा=हल्दी ।	छद्मवेश=कपटी भेस ।
अपरिचित=न जान-पहचान	मौन-स्वीकृति=चुपचाप स्वीकार
वाला ।	करना ।
क्रन्दन=रोना	अवहेलना=तिरस्कार करना,
शृगालों=गीदड़ों ।	उल्लंघन करना ।
कगारों=ऊँचे टीलो ।	अवज्ञा=अपमान, अनादर ।
पाकशाला=रसोई-घर ।	हलाहल=विष
शूस=रिश्वत ।	साक्षा=कीर्ति फैलाने वाला काम ।
प्रचण्ड=उग्र, भयंकर ।	विधात्री=करने वाली ।

प्रक्षालन=धोना ।

अभिसिंचन=छिड़कना ।

उत्सर्ग=त्याग, बलिदान ।

धवल=सफेद ।

पट-मण्डल=खेमे, गामियाने ।

सान्त्वना=ढारस, आश्वामन ।

याचना=प्रार्थना ।

आग्रह=हठ ।

विवेक=भले-बुरे का ज्ञान, समझ,
सूझ-बूझ ।

कुमुभा=अफीम और भाग के
योग में बना हुआ एक मादक
द्रव्य ।

आवेश=जोश ।

विलम्ब=देर ।

लांछित=कलकित ।

अट्टहास=ठठा कर हँसना, जोर
की हँसी ।

षड्यन्त्र=साजिश ।

वमन=कै करना, उल्टी करना ।

सच्चा धर्म

असाधारणता=विशेषता

निराकरण करना=दूर करना ।

व्यथित=दुःखित ।

शौच-अशौच=पवित्र-अपवित्र ।

भक्ष्याभक्ष्य=खाने योग्य और न
खाने योग्य ।

चौथेपन=जीवन की चौथी
अवस्था, बुढ़ापा ।

पशोपेश=आनाकानी, हिच-
किचाहट ।

पातक=पाप ।

लघु यवनिका=छोटे पर्दे का
गिर्ना ।

निस्तव्यता=खामोशी, मन्ताटा ।

उद्विग्नता=घबराहट ।

इहलोक=यह लोक ।

सत्यं त्वर्नेन = सत्यस्वत्प
तुम्हको मैं अमृतमय जल से
मिक्त करता हूँ ।

अमृतापस्तरणमसि=हे अमृत-
मय जल, तू मेरा आच्छादन
(पाग-निवागक) है ।

जोंक

शयनगृह=सोने का कमरा ।

पत्नीव्रत=अपनी पत्नी से ही प्रेम
करने वाला ।

अभिनय=स्वोंग बनाना ।

खिन्न=दुःखित, चिन्तित ।

रसास्वादन=रस का अनुभव
करना ।

अज्ञात=न जाना हुआ ।

अनुरोध=आग्रह ।

उपवास=अनशन, फाका ।

धता बताना=चलते करना, टाल देना ।

मूढ़=मन की अवस्था ।

शिष्टता=सभ्यता, सज्जनता ।

निराशातिरेक=निराशा का बहुत बढना ।

अन्यमनस्कता=अनमनापन ।

सम्पन्न=धनवान् ।

गिलोरी=पानो का बीडा ।

व्यवसाय=पेशा ।

दार्शनिक=फिलासफर, दर्शन शास्त्र जानने वाला ।

उल्लास=हर्ष ।

संस्कार और भावना

संक्रान्तिकाल=युग-परिवर्तन के बीच का समय ।

प्रतीक=चिह्न ।

रक्तिम आभा=लाल प्रकाश ।

स्निग्धता=चिकनापन ।

वेदन=पीडा ।

सान्त्वना=ढाढस, आश्वासन ।

विद्रूप=मुख की आकृति का बिगडना ।

त्रस्त=डरा हुआ ।

अन्तर्मन=अन्दर का मन, हृदय ।

नैतिक=नीति से सम्बन्ध रखने वाला, इखाकी ।

विजातीय=दूसरी जाति को ।

मरणासन्न=मरने के समीप ।

मुखरित=बोल रहा, प्रकाशित ।

मालव-प्रेम

उत्तरीय=दुपट्टा ।

छवि=शोभा ।

सजन=सज्जन, प्रिय ।

पूर=प्रवाह ।

बलिष्ठ=बहुत बलवान् ।

अशिष्ट=असभ्य ।

स्फूर्ति=फुरती, चुस्ती ।

तारिका=नक्षत्र, तारा ।

चिरंतन=पुराना ।

विक्षिप्त युवक=भटक रहे मन वाला नौजवान ।

स्तब्ध=निश्चेष्ट ।

उद्दाम=उद्दण्ड, वे-रोकटोक ।

आमंत्रित किया है=बुलाया है ।

आतताइयों=आग लगाने वाले तथा लूटमार आदि करने वाले अत्याचारियों ।

बाध्य=विवश, मजबूर ।

सैनिकता = सैनिकपन अर्थात्

सेनावल ।

कार्य-विभाजन = कार्यों की बाँट

अपार = जिसका कोई पार न हो ।

अश्वारोही = घुडसवार ।

अपरिभित = अनगिनत ।

विसर्जित किया = भेजा ।

हतबुद्धि = नष्ट-बुद्धि ।

प्रतिदान = बदले में देना ।

कपर्यु

क्रमशः = धीरे-धीरे, क्रम से ।

भद्रतापूर्वक = सज्जनतापूर्वक ।

आश्वस्त = तसल्ली पाये हुए ।

वास्तविकता = असलीयत ।

अस्थिरतापूर्वक = बेचैनी से ।

एथलीट = फुर्तीला, खिलाड़ी ।

लिप्त = गाड़ी में बिठा कर ले

जाना ।

गर्वित = गर्वपूर्ण, अभिमान-भरे ।

हताश-सूचक = आशा के टूटने

की सूचना देने वाली ।

असमंजस-पूर्ण = दुविधा भरे ।

भोर का तारा

अस्त-व्यस्त = बिखरी हुई ।

आतुर = व्याकुल ।

रजनीवाला = रात्रिरूपिणी लड़की ।

शिल्पी = कारीगर ।

भावोद्रेक = भावों की अधिकता ।

अलगनी = कपड़े लटकाने के लिए

लगाई हुई रस्ती या बाँस ।

चाञ्चल्य = चञ्चलता ।

परस = छू कर ।

लयमान = लीन हो रहा ।

पदचाप = पावों की ध्वनि ।

भावुक = भावनाओं से युक्त ।

परिणत = बदली हुई ।

आश्चर्यान्वित = आश्चर्ययुक्त,
हेरान ।

सिरमौर = शिरोमणि ।

विभोर = मग्न ।

क्षत्रप = मण्डल या प्रान्त का
शासक ।

चैतन्य = सावधान ।

सुरम्य = सुन्दर ।

ओजमयी = वीरता का भाव
भरने वाली ।

मुद्रा = मुख की आकृति ।

